

साधनासदनस्तोत्रसंचयः

सम्पादक

महामण्डलेश्वर त्यागमूर्ति श्रीस्वामी गणेशानन्दपुरीजी
महाराज, संस्थापक

साधना-सदन
डाकघर : कनखल (शंकराचार्य चौक)
हरद्वार (उत्तरप्रदेश)

सद्गुरु श्रीस्वामी प्रेमपुरीजी
सत्संग-मण्डल
एल.डी.आर. क्रासलेन, बम्बई-६

प्रकाशक

प्रकाश बापना
बापना चैरीटेबल ट्रस्ट
कलकत्ता

विक्रम सम्वत्
२०४५

मूल्य
श्रद्धापूर्वक पाठ एवं स्वाध्याय

प्रकाशक :
बाफना चैरीटेबल ट्रस्ट
कलकत्ता

★

पुस्तकप्राप्तिस्थान :

१. साधना-सदन
डाकघर : कनखल (शंकराचार्य चौक) हरिद्वार (उ.प्र.),
फोन-१८६

२. सत्संग-मण्डल
१०, लिटल गीब्स रोड, बम्बई-६
फोन-८१२२१८०

★

मुद्रक :
वैस्टर्न इंडिया आर्ट लीथो वर्क्स प्रा. लि.
१०७, मरोल को. ओपरेटिव इण्डस्ट्रीयल इस्टेट, बम्बई-४०० ०५९

५००० प्रतिया : महाशिवरात्री, ८९

ॐ विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म

शुभाशीर्वाद

साधनासदन आश्रमस्थ सन्तों एवं भक्तों के नित्य पाठ की पुस्तक 'साधनासदन स्तोत्र संचय' कुछ समय से समाप्त हो गई थी। अतः उसका प्रकाशन आवश्यक था।

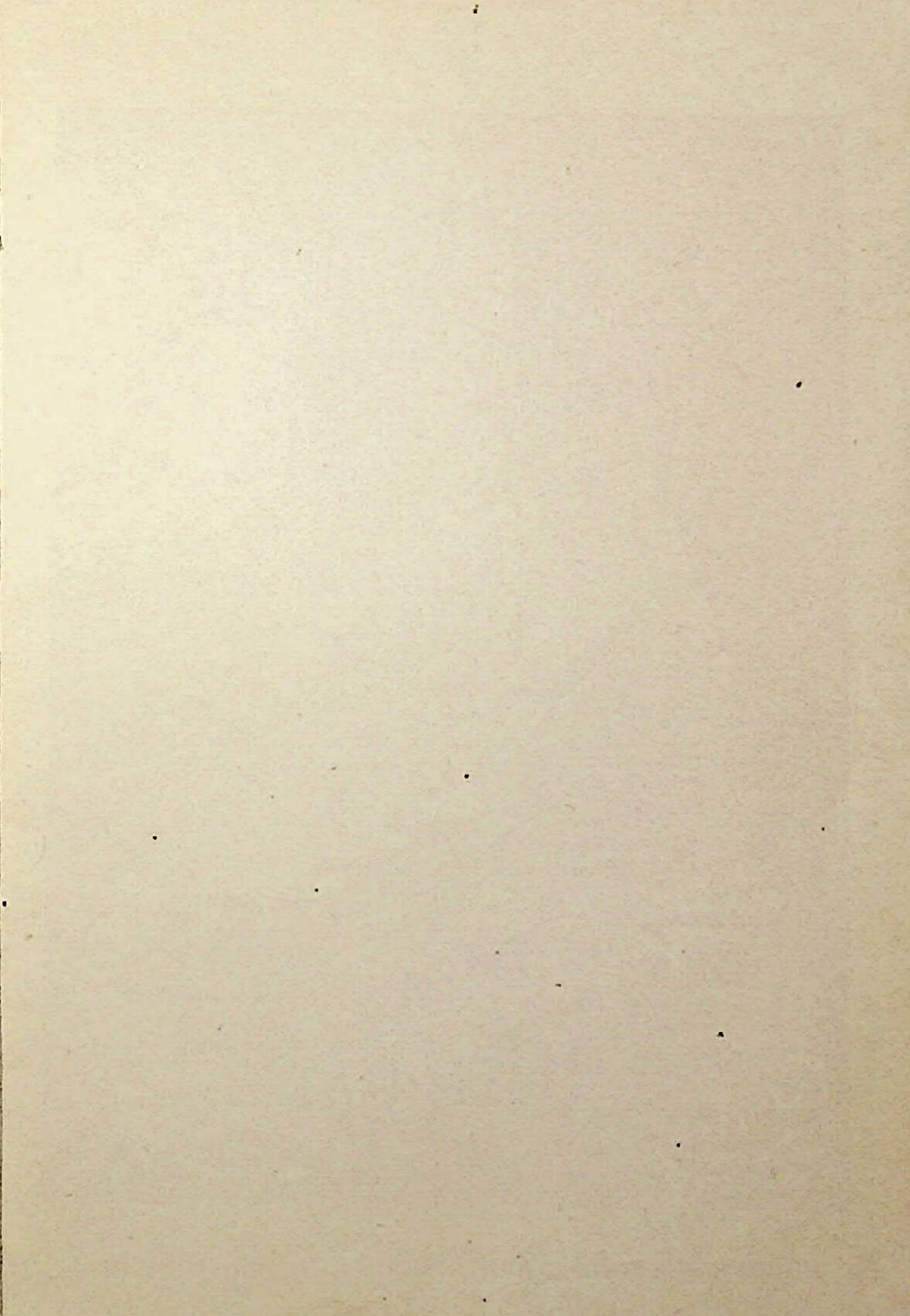
श्री प्रकाशचन्द्र बाफना को मेरा हार्दिक शुभ आशीर्वाद है, जिन्होंने स्वर्गीय पिता श्री मिश्रीमल जी बाफना की पुण्यस्मृति में इस 'साधना–सदन स्तोत्रसंचय' का सभी श्रद्धालुओं के श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय एवं पाठ के लिए प्रकाशित कराया है। वह भी उस शुभ अवसर पर जबकि वे आगामी शिवरात्री पर भगवान् शंकर की स्थापना का शुभ संकल्प कर चुके हैं।

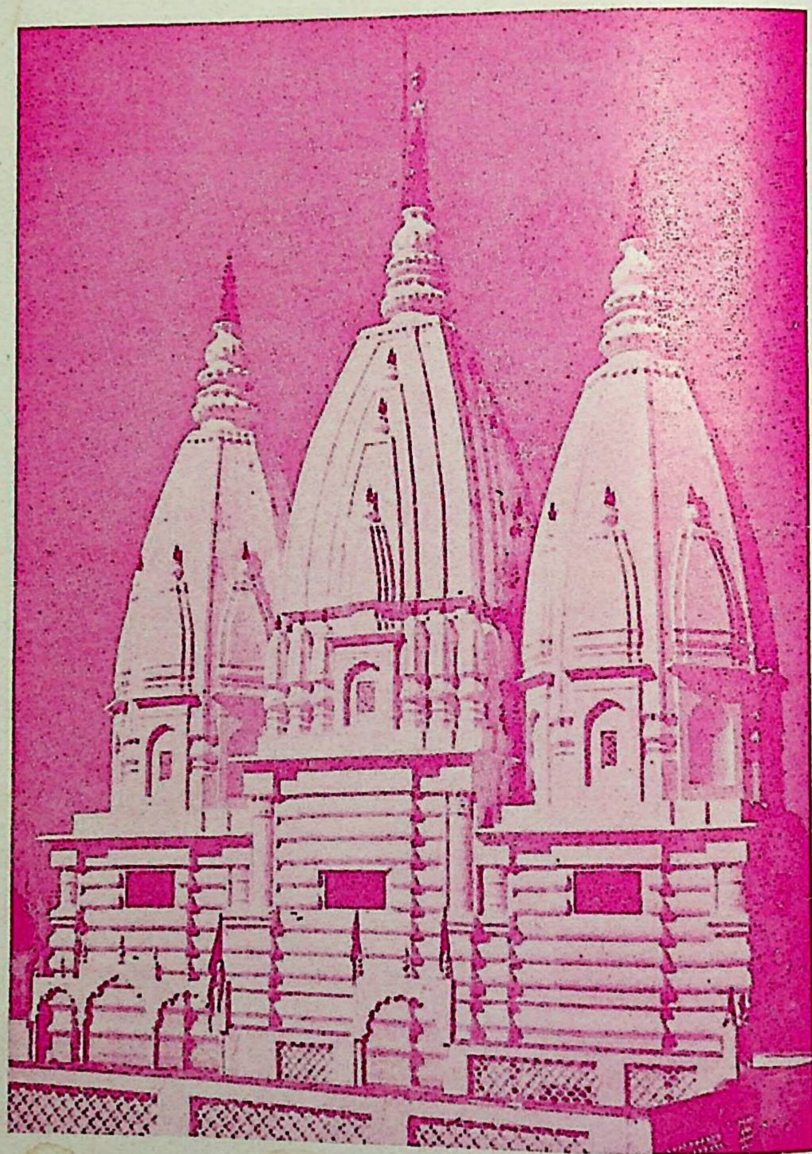
श्रीमान प्रकाश बाफना के स्वर्गीय पिता श्री कुछ वर्षों से अधिक समय हरद्वार के पवित्र गंगातट पर स्थित साधना सदन में ही निवास करते थे एवं इस स्तोत्र में आया मुख्य स्तोत्र श्री शिवमहिम्न का पाठ उनकी नित्यपूजा का प्रधान अंग था; उन्होंने स्वयं एक बार बताया था कि मैं इस स्तोत्र का पाठ अपने बड़ों के सम्पर्क में आकर छोटी उम्र से ही करने लगा था। इसलिए यह स्तोत्र कण्ठस्थ है। अतः उनकी स्मृति में इस "साधना–सदनस्तोत्रसंचय" का प्रकाशन कराकर श्री प्रकाशचन्द जी बाफना ने बड़ा ही पुण्य कार्य किया है। भगवान् उनको सुखसमृद्धि एवं शान्ति प्रदान करें।

शुभेच्छु :–

स्वामी गणेशानन्दपुरी

१०-१२-८८





साधना सदन देवालय के तीनों मन्दिरों का उपरिभाग शिखर चित्र

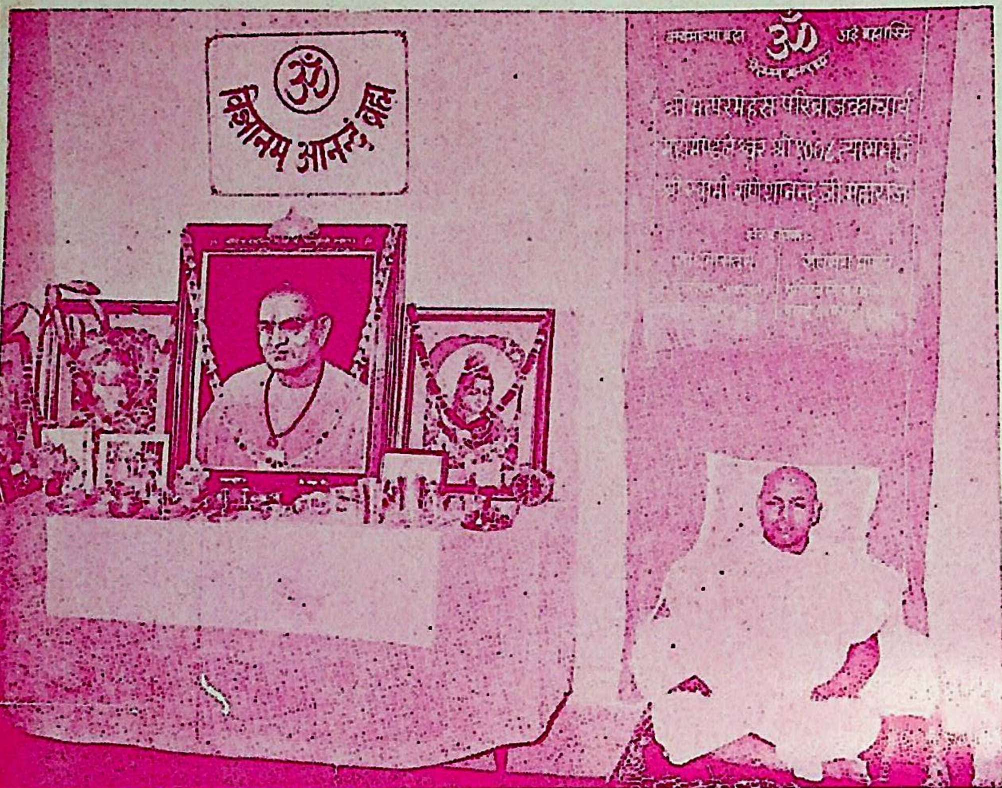
ओ३म्

साधना-सदन का संक्षिप्त परिचय

"साधना-सदन" भारत की पवित्र भूमि हरद्वार में पावन गंगातट पर सन्तों, साधकों एवं भक्तों के निवास योग्य आश्रम है। आश्रम में भगवान् शिव, भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण के तीन विशाल मन्दिर हैं। आश्रम के प्रायः सभी कमरों में रसोई, स्नान-घर एवं शौचालय आदि की स्वतन्त्र व्यवस्था है। आश्रम में महात्मा लोग, कुछ विद्यार्थी एवं साधक भक्त निवास करते हैं। सब के भोजन की आश्रम में ही व्यवस्था है। यथा-साध्य गौमाता की सेवा भी होती है। मन्दिरों में प्रातःसायं पूजन, आरती एवं महिम्नादिस्तोत्रपाठ नित्यप्रति होता है। आश्रम में नित्यप्रति सत्संग (स्वाध्याय-प्रवचन) भी होता है। वातावरण पवित्र एवं शान्त है, अतः साधकों के लिए "साधना-सदन" विशेष आनन्दप्रद है।

संस्थापक

महामण्डलेश्वर त्यागमूर्ति
श्री स्वामी गणेशानन्दजी महाराज



वांये

ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर
स्वामी श्री प्रेमपुरी जी
महाराज का
पूजा में रक्खा हुआ चित्र ।

दांये

महामण्डलेश्वर त्यागमूर्ति
श्री स्वामी गणेशानन्द जी
महाराज का सत्संग मंडल
बम्बई में लिया हुआ चित्र ।



सम्पादकीय

साधना सदन (आश्रम) में जिन स्तोत्रों का सम्मिलित रूप में नित्यप्रति पाठ होता है उन्हींका प्रस्तुत पुस्तक में संचय (संग्रह) है इसीलिए इसका नाम "साधना सदन स्तोत्र संचयः" रखा गया है, जिसकी विशेष चर्चा प्रथम संस्करण में हुई है । 'साधना सदन स्तोत्र संचय' का प्रथम संस्करण आज से लगभग पचीस वर्ष पूर्व मन्दिरों की प्रतिष्ठा के अवसरपर छपा था । इसका द्वितीय संस्करण आज से बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था, वह भी समाप्त हो गया है । भगवान् की असीम अनुकम्पा से यह तृतीय संस्करण सम्पन्न हो रहा है । इस बार मूल स्तोत्रों की पुस्तक अलग से छपवा दी गयी हैं जिससे कि मूल पाठ करने वालों को सुविधा रहे । प्रस्तुत पुस्तक में केवल वही स्तोत्र लिए हैं, जिनका हिन्दी अनुवाद भी है ।

संगृहीत स्तोत्रों में प्रमुख महिम्नः स्तोत्र है । महिम्नः स्तोत्र पाठ संन्यासियों के प्रायः सभी आश्रमों में नियम से होता है । इस महिम्नःस्तोत्र का इतना व्यापक प्रचार है कि सम्पूर्ण भारत के सभी भागों में इसका अत्यधिक आदर पाया जाता है । काश्मीर से कन्याकुमारी तक एवं पूर्वी समुद्र तट से पश्चिमी समुद्र तट तक इसका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान होता हैं । प्रधानरूप से भगवान्

शिवजी के धामों, ज्योतिर्लिंगों एवं मन्दिरों में महिम्नः स्तोत्र का अनुष्ठान विशेष रूप से होता है। काश्मीरी शैव ग्रन्थों में तो इसका "सिद्धस्तोत्र" के नाम से उल्लेख हुआ है। आस्तिक भक्तों को महिम्नः स्तोत्र के अनुष्ठान से अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। भगवान् की मंगलमयी भक्ति एवं भगवान् के सगुण-निर्गुण स्वरूप साक्षात्कार का साधन भी यह महिम्नः स्तोत्र है।

भगवान् की अहैतुकी कृपा से ही इसका प्राकट्य है। यद्यपि इसके कर्ता गन्धर्वराज श्रीपुष्पदन्ताचार्य कहे जाते हैं। जिन्होंने इसी महिम्नः स्तोत्र के प्रभाव से अपनी खोई हुई शक्ति एवं सिद्धि को पुनः प्राप्त किया था। परन्तु साथ ही यह प्रसंग भी शास्त्रों में आता है कि जब श्री पुष्पदन्ताचार्य को यह अभिमान हो गया कि "मैंने ऐसी स्तुति की, जिससे स्वयं भगवान् भी बहुत प्रसन्न हो गये।" तब अन्तः साक्षी भगवान् तो पुष्पदन्ताचार्य का मन देख ही रहे थे। उन्होंने शीघ्र ही अपने सम्मुखास्थित भृङ्गी नामक गण को मुख खोलने के लिए कहा 'पुष्पदन्त ने देखा कि भृङ्गी के बत्तीसों दांतों पर 'महिम्नः' के मूल बत्तीसों श्लोक प्रथम से ही अंकित हैं। पुष्पदन्ताचार्य को समझते देर नहीं लगी कि "मेरे और सभी भक्तों के उद्धार हेतु भगवान् ने मुझे निमित्त बना कर इस 'महिम्नःस्तोत्र' को प्रगट किया है। वास्तव में यह भगवान् की नित्य सिद्ध स्तुति है।"

अत एव सम्मिलित रूप में या व्यक्तिगत रूप से भी यदि महिम्नः स्तोत्र' का पाठ भावपूर्वक एकाग्र चित्त से किया जाय तो तत्काल फल प्राप्त होता है।

भगवान् का निर्गुण निराकार स्वरूप तो अद्वितीय तत्त्व है,

उसमें भेद गन्ध की कोई बात ही नहीं । सगुण साकार की दृष्टि से यह स्तोत्र भगवान् शिव की स्तुति कहा जाता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न स्वाभाविक हो जाता है कि 'साधना-सदन' में तो भगवान् विष्णु के पूर्ण अवतार भगवान् श्रीकृष्ण एवं भगवान् राम आदि भी विराजमान हैं । फिर उन विग्रहों के सम्मुख भी भगवान् शिव की ही स्तुति क्यों? इसका मुख्य समाधान तो यह है कि 'जैसे हर और हरि' इन दोनों शब्दों का मूल एक ही 'हृ' धातु है । 'अ' और 'इ' प्रत्यय के अर्थ में भी कोई भेद नहीं हैं । केवल आकार भिन्न भासता है । इसी प्रकार 'हर और हरि' के वाच्य भगवान् शिव और भगवान् विष्णु में कोई भेद नहीं है और न उनके विश्वास (प्रत्यय) में कोई भेद है केवल विश्वास के आकार में भेद है ।' परन्तु उससे वस्तु का भेद नहीं होता है । यदि आकार के भेद से वस्तु का भेद होने लग जाय तो प्रत्येक मनुष्य में भी भेद होगा । क्योंकि एक ही मनुष्य के बैठने पर आकार भिन्न होता है, और खड़े होने पर भिन्न होता है । किन्तु उससे मनुष्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति नहीं माना जाता है । इसी प्रकार सगुण साकार भगवान् में भी कोई भेद नहीं है । उनके आकार भले ही भिन्न-भिन्न हों । अत एव 'विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र' में भी आदिदेव महादेव'' आदि भगवान् शिव के नाम आते हैं, और 'शिव सहस्त्र नाम' में भगवान् विष्णु के नाम हैं । अतः विद्वानों का वचन भी है कि ''हरिहरयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययभेदाद्विभिन्नवदभाति ।'' स्वयं महिम्नः स्तोत्र' में भी ''रुचीनां वैचित्र्यात्'' एवं 'बहलरजसे' इत्यादि पद्यों से स्पष्ट किया गया है कि एक ही भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब कुछ हैं । एवं निज-निज रुचि के अनुसार साधक भिन्न-भिन्न साधन मार्गों से चलकर एक ही भगवान् की प्राप्ति करता है । अतः शिव और विष्णु को लेकर भगवान् में भेद

की कोई शंका नहीं रहती है ।

यह सब होने पर भी एक प्रश्न शेष रह जाता था कि जब 'महिम्नः स्तोत्र' का पाठ किया जाता है तो उसके अर्थों के अनुसार भगवान् शिव के ही सगुण साकार स्वरूप एवं लीलाओं का ध्यान होता है । भगवान् विष्णु का या भगवान् विष्णु के अवतार भगवान् कृष्ण और भगवान् राम आदि के स्वरूप व लीलाओं का नहीं? इस प्रश्न का समाधान आज से करीब तीन सौ वर्ष से भी पूर्व हुए वेदादि शास्त्रों के महान पंडित एवं ख्याति प्राप्त दार्शनिक विद्वान् तथा भगवान् कृष्ण के अनन्य अनुभवी भक्त संन्यासीयों में अग्रगण्य श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वतीजी ने किया है । उनको 'महिम्नः स्तोत्र' में अपने ईष्ट देव के भी स्वरूप एवं दिव्य लीलाओं का दर्शन हुआ और उन्होंने 'महिम्नः स्तोत्र' की व्याख्या में भगवान् विष्णु तथा उनके अवतार भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण आदि के भी स्वरूप तथा दिव्य लीलाओं की झांकी उपस्थित की । एवं अन्त में कहा कि "एकात्मने नमो नित्यं हरये च हराय च ।" अर्थात् हम एकात्मा हर और हरि के चरणों में एक साथ प्रणाम करते हैं ।

भगवान् के भक्त एवं ब्रह्मविद्या के आचार्य संन्यासी सम्राट स्वामी श्री मधुसूदन सरस्वती ने जो मार्ग दर्शन कराया वह साधना-सदन के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक सिद्ध हुआ है क्योंकि श्री मधुसूदन स्वामी की रीति से 'महिम्नःस्तोत्र' की 'हरि हर' पक्षीय व्याख्या से इस शंका का समाधान हो जाता है कि शिव महिम्नःस्तोत्र से भगवान् कृष्ण और भगवान् राम आदि की स्तुति कैसे होती है? क्योंकि उक्त रीति से इस स्तोत्र में हरि और हर दोनों की महिमा का गान है ।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए साधना-सदन के लिए

महिम्नःस्तोत्र की पूरी मधुसूदनी व्याख्या प्रकाशित होनी चाहिए थी । परन्तु वैसी सुविधा न होने के कारण मधुसूदनी टीका का केवल विष्णु पक्ष भी संक्षेप से ही दिया गया है । यद्यपि श्री मधुसूदन स्वामी ने उनके टीका का सार लेकर टीकान्तर करने का निषेध किया है । तथापि टीकान्तर का तात्पर्य अपने नाम से और खासकर सस्कृत में टीका करने से है । यह (सान्वय भावार्थ) न तो किसी अन्य व्यक्ति के नाम से है और न संस्कृत में ही है । इसमें नाम तो श्री मधुसूदन स्वामी जी महाराज का ही है । केवल सर्वसाधारण जिज्ञासुभक्त, साधकों को इससे लाभ हो । इस उद्देश्य से मधुसूदन स्वामी की टीका के विष्णुपक्ष का सान्वय संक्षिप्त भावार्थ दिया गया है, और उसका श्रेय भी गुरुकुल विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा. श्री रामनाथ जी वेदालंकार को है । उन्होंने मेरे एवं हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री राजनारायण जी ओझा के अनुरोध पर अल्प काल में एवं शुद्ध निष्काम भाव से 'साधना सदन स्तोत्र संचय' के लिए उक्त सान्वय संक्षिप्त भावार्थ लिख दिया था। भगवान् की कृपा से उनका सब प्रकार से अभ्युदय हो ।

'महिम्नःस्तोत्र' का शिवपक्षीय सान्वय भावार्थ ब्रह्मलीन महामंडलेश्वर सद्गुरु श्री स्वामी प्रेमपुरी जी महाराज का है ।

जहाँ पाठभेद है वहाँ वही पाठ रखा गया है जो साधना-सदन के नित्य पाठ में अभ्यस्त हो गया है ।

कुछ श्लोकों का अर्थ दोनों ही पक्षों में प्रायः समान है । तथापि अन्वय एवं भावार्थ पृथक्-पृथक् ही दिया गया है । जिससे अपनी-अपनी रुचि के अनुसार केवल एक पक्ष का अर्थ देखने वाले भक्तों को भी सुविधा हो ।

अन्वय तो संस्कृत के विद्वान् महानुभावों के लिए है । जिससे वे समझ सकें कि अमुक श्लोक का अमुक अर्थ कैसे हुआ, और उसका भावार्थ सामान्य जिज्ञासु भक्तों के लिए है ।

साधना-सदन में महिम्नःस्तोत्र पाठ के पूर्व जो आरती स्तुति एवं पुष्पांजलि की जाती है । वह जब शिवमन्दिर के सामने होती है, तब उसमें शिवमन्दिर स्थित भगवान् शिव, भगवान विष्णु, श्री गणेश जी, दुर्गामाता एवं भगवान् सूर्य इन पंच देवों के अलावा आचार्य गुरु भगवान् दक्षिणामूर्ति एवं भगवान् शंकराचार्य की भी स्तुति होती है एवं अन्त में कुछ वेदमन्त्रों से पुष्पांजलि समर्पित की जाती है ।

श्री कृष्णमन्दिर (राधेश्याम मन्दिर) के सामने प्रथम तीन मन्त्रों में भगवान् विष्णु की स्तुति होती है, जिनमें दो मन्त्र क्रमशः भक्त शिरोमणि श्री प्रल्हाद जी एवं श्री ध्रुव जी के वचन हैं । पुनः अन्य श्लोकों में से कृष्णमन्दिर स्थित भगवान् कृष्ण, भगवान् लक्ष्मीनारायण एवं राधेश्याम की स्तुति होती है ।

श्री राममन्दिर के सामने श्रीराम मन्दिर स्थित माता जानकी जी एवं श्री लक्ष्मण जी सहित, भगवान् राम की तथा श्री हनुमान जी की स्तुति होती है । अन्त में सामान्यरूप से सब की स्तुति के रूप में श्री महिम्नःस्तोत्र का पाठ एवं 'शिव नामावलि' होती है ।

यद्यपि उक्त प्रकार से जैसे भगवान् शिव की स्तुति रूप से प्रसिद्ध 'महिम्नःस्तोत्र' द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति भी होती है, उसी प्रकार 'श्री विष्णु सहस्त्रनाम' से भगवान् शिव की भी स्तुति होती है । तथापि तत्तत्स्तोत्रों का तत्तद्देवताओं की स्तुति के लिए प्रधानतया उपयोग होता है । अतः जैसे 'महिम्नःस्तोत्र' से

प्रधानतया भगवान् शिव की सायंकाल स्तुति की जाती है, उसी प्रकार प्रातःकाल 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' से प्रधानतया भगवान् विष्णु की स्तुति करने के लिए 'साधना-सदन' में वैदिक शान्तिपाठ के साथ 'श्री विष्णुसहस्त्रनाम' का पाठ होता है। क्योंकि 'साधना-सदन' में भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णु के अवतार भगवान् कृष्ण एवं भगवान् राम की समान रूप से प्रधानता है।

अतः द्वितीय संस्करण में 'साधना सदन स्तोत्र संचयः' में वैदिक शान्तिपाठ सहित 'श्रीविष्णुसहस्त्रनाम' का भी सम्पादन कर लिया गया था। इस बार 'श्रीविष्णुसहस्त्रनाम' को इस पुस्तक में न देकर पाठकों के सुविधार्थ केवल मूल स्तोत्रों की पुस्तक में दिया है

इस संस्करण में भगवान् की मूर्तियों के चित्र इस उद्देश्य से दिये गये हैं कि जो सज्जन साधना-सदन मन्दिर से अन्यत्र भी इन स्तोत्रों का पाठ करें, उनको भी उक्त मन्दिर में भगवान् के समक्ष पाठ करने जैसा आनन्द की प्राप्ति हो।

यद्यपि "साधना-सदनस्तोत्रसंचयः" साधना-सदन में नित्य-पाठ के निमित्त प्रकाशित किया गया है। एवं पाठक उसका अर्थ समझकर विशेष लाभान्वित हों, इसके लिए अर्थ भी दिया गया है, तथापि जो कोई भी भगवान् का भक्त एवं जिज्ञासु इन स्तोत्रों का पाठ एवं स्वाध्याय श्रद्धाभक्ति से करेगा, उसको अवश्य भगवान् की परमानन्ददायिनी कृपा प्राप्त होगी।

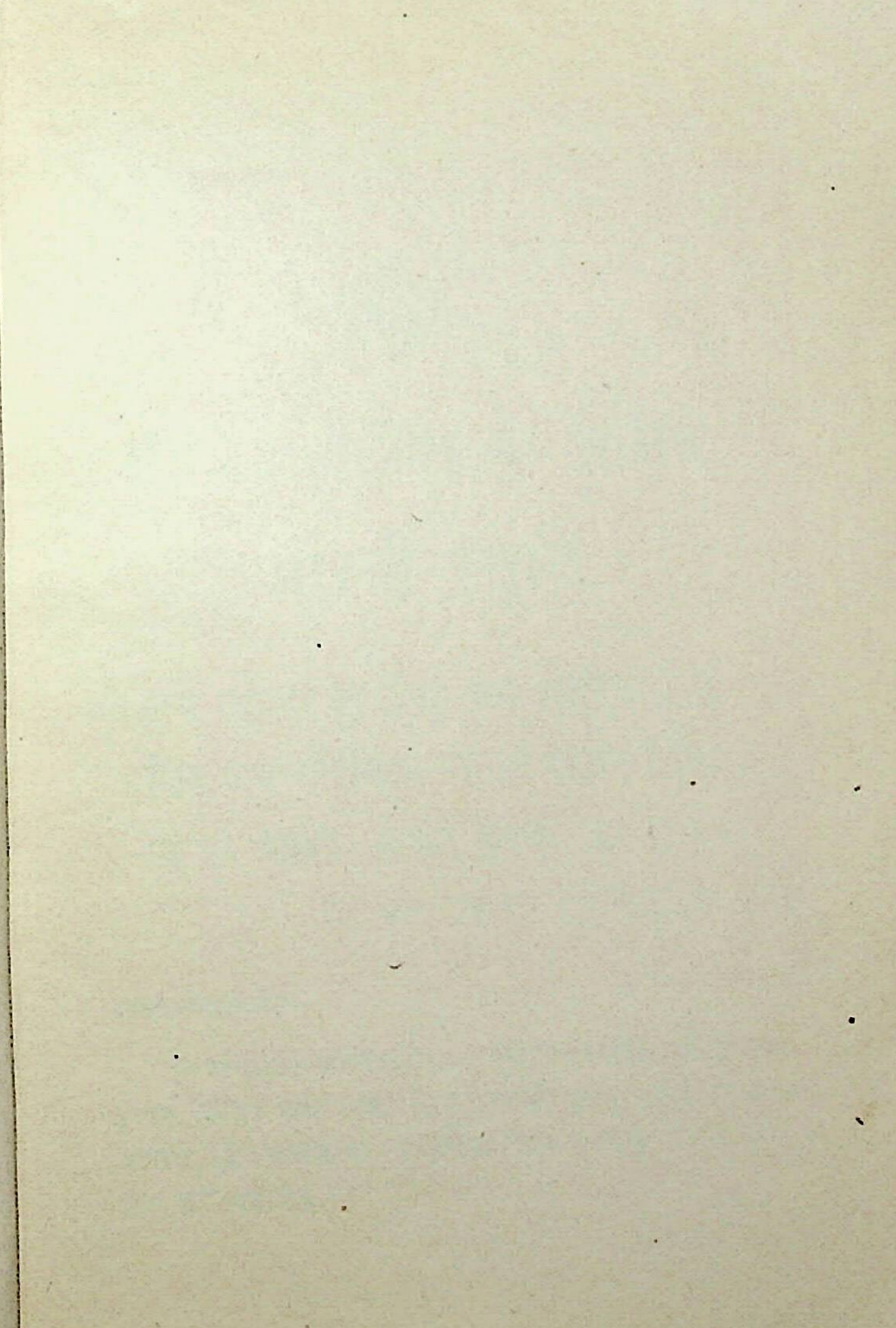
द्वितीय संस्करण में प्रकाशित ट्रस्टीगणों में कुछ परिवर्तन हुआ है। अतः इस तृतीय संस्करण में वर्तमान ट्रस्टियों की नामावली दी गयी है।

सामान्य जानकारी के लिये पूर्व प्रकाशित साधना-सदन का संक्षिप्त परिचय, एवं उद्देश्य-नियम भी यथा स्नान दे दिया गया है

हरिः ओं तत्सम्

महामण्डलेश्वर त्यागमूर्ति श्री १००८
स्वामी गणेशानन्द पुरीजी महाराज

महाशिवरात्रि
वि. सम्वत्
२०४५





साधनासदन देवालय के शिव मन्दिर में विराजमान प्राचीन वाणमूर्ति एवं शाम्भवी ध्यान मुद्रा में प्रसन्न वदन भगवान् शिव, शंकर ।



श्रीशिव मन्दिर के सामने आरती-स्तुति

ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश
शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं
त्वं मां पालय शम्भो कृपया जगदीश ।।
ॐ हर हर हर महादेव ।।१।।

सान्वयपदच्छेद—

ॐ गंगाधर हर शिव जय, गिरिजाधीश गौरीनाथ शिव (त्व) जय जय, (हे) शम्भो त्वम् माम् नित्यम् पालय, (हे) जगदीश त्वं कृपया नित्यम् माम् पालय, हर, हर, हर महादेव ।।

भावार्थ–

ओंकाररूप सच्चिदानन्दघन परमात्मन्! जटाजूट में भागीरथी गंगा को और हृदयारविन्द में ज्ञान-गंगा को धारण करने वाले! (पृथ्वी का सबसे उच्च प्रदेश हिमालय है और हिमशिखररूपी शिरोभाग से ही त्रिभुवन-पावनी दोनों गंगायें प्रवाहित होती हैं। संसार के हित और सगर-पुत्रों के उद्धार के लिए महापुरुषार्थी भगीरथ के द्वारा लायी हुई स्वर्गगंगा के प्रपात को पाताल में न पैठने देकर जटाजूट में उल्झा रख के शनैः शनैः प्रवाहित करते रहते हैं,– यह आशय है) (अशेष अज्ञान को) हर लेने वाले! है मंगलमय शिवजी! (थके हुए बच्चों को जैसे माता पिता अपनी गोद में सुला के आराम पहुँचाते हैं, कर्म फल भोगते-भोगते थके हुए जीवों को भी प्रलय के समय उसी प्रकार अपने स्वरूप में सुला (समा) लेने वाले का नाम शिव है) (आपका) जय हो; पहाड़ी लड़की के उपर कृपा करके उस पार्वती के पतिभाव को स्वीकार करने वाले! हे शिवजी! आपका सदाही जय हो, जय हो । हे सबके सुख दाता! आप मेरा सदा (कामक्रोधादि से) रक्षा करें । हे जगदीश्वर! आप कृपा करके; अवश्यमेव मेरी (जन्म मृत्यु से रक्षा करें । हे प्रणवरूप परमेश्वर! हे त्रिताप को हर लेने वाले महादेव जी! (मेरी विनंती व्यर्थ न जाने पावे) ।

शिव शब्द उच्चारण में बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर एवं स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है । इसकी सिद्धि (उत्पत्ति) 'वश कान्तौ' धातु से हुई है, जिसका आशय यह है किं जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है । सब चाहते हैं अखंड आनन्द को अतएव शिव शब्द का अर्थ आनन्द हुआ ।

जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनन्द को ही परम मंगल तथा परम कल्याण कहते हैं, अतएव 'शिव' शब्द का अर्थ परम मंगल या परम कल्याण भी समझना चाहिए। इस भाव को लक्ष्य में रखने के लिए ही पुनः पुनः 'शिव' शब्द को दोहराया गया है। जिसने सबका हरण (संहार) कर लिया वही अन्त में शेष रहेगा, फिर सृष्टि के समय सृष्टि भी वही करेगा। दूसरा कोई है ही कहाँ? जो सृष्टि या पालन करे— यह है 'हर' शब्द का अभिप्राय, इस अभिप्राय को दृढ़ करने के लिए ही बार बार 'हर' शब्द का प्रयोग हुआ है।

गजाननं भूतगणाधिसेवितं,
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं,
नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥२॥

गजवदन सब भूतगण सेवा करें जिनकी सदा
जामून और कपित्थफल भक्षण करें हैं जो मुदा
उमानन्दन शोक भंजन प्रथम पूज्य गणेश को
करके स्मरण उस विघ्नहारी के नमूं पद कमल को ॥

सान्वयपदच्छेद—

भूतगणाधिसेवितम्, कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्, शोकविनाशकारकम् विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् उमासुत गजाननम् अहम् नमामि।

भावार्थ :–

भूतगणों के द्वारा अपने अपने अधिकार के अनुसार सेवित; कैंथ तथा जांबुन के (गजभुक्त कपित्थ का दृष्टान्त प्रसिद्ध है ।) उत्तम फलों के भक्षक; शोक के विनाशक; जिनके चरण कमल ही विघ्नों के नियामक (निवारक) हैं उन पार्वती पुत्र गजमुख (भगवान् गणेश जी) को (नित्यम्प्रति तथा सर्व प्रथम) नमस्कार करता रहता हूँ ।

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ।। ३ ।।

सान्वयपदच्छेदः—

उमापतिम् सुरगुरुम् देवम् (अहम्) वन्दे; जगत्कारणम् (शिवम्) वन्दे, पन्नगभूषणम् मृगधरम् वन्दे; पशूनाम् पतिम् (शङ्करम्) वन्दे; सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम् त्रिनेत्रम्, (शिवम्) वन्दे; मुकुन्दप्रियम् वन्दे; भक्तजनाश्रयम् शिवम् वन्दे; वरदम् शङ्करम् (अहम्) वन्दे ।

भावार्थ :–

उमा (ब्रह्म विद्या के) पति (पालन या वितरण कर्ता) शिवतत्वैकनिष्ठ पार्वती शिव प्राप्ति के लिए घोर तप करने लगी । माता मेनका ने स्नेहकातर होकर 'उ' (वत्से) 'मा'

ऐसा मत करो) कहा; अतः उनका नाम उमा हुआ; इन्द्रादि देवों के गुरु; महादेव जी को (मैं) वन्दन करता हूँ। जगत के अभिन्न निमित्तोपादान कारण (शिवजी) को वन्दन करता हूँ। अपने बच्चों का भी भक्षण कर जाना यह व्यवहार सर्प जाति में ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं ऐसे स्वसन्तानभक्षी सर्पों को भी भूषण सा धारण करनेवाले; मृगधर शंकर (शतपथ ब्राह्मण १।४ में मृग को यज्ञ स्वरूप कहा है, यज्ञ के मृगत्व यानी अन्वेषण को धारण करने वाले शिव को वन्दन करता हूँ। पाशबद्ध जीवों के पालन (पासमुक्त) करनेवाले (शिव) को वन्दन करता हूँ। सूर्य, चन्द्र तथा अग्निरूप तीननेत्र वाले को; (चन्द्र के समान आल्हादक, सूर्य के समान अज्ञानतमोनाशक तथा अग्नि के समान रागद्वेषादि दोषदाहक तीन नेत्र शिव के हैं) वन्दन करता हूँ। मुकुन्द (विष्णु भगवान्) के प्रिय को या मुकुन्द है प्रिय जिसे उसको मैं वन्दन करता हूँ। भक्तजनों के एकमात्र आश्रय शिव को वन्दे। तथा वरदान देकर (सबको) सुखी करने वाले (शिव' को वन्दे। 'शम्' कहते हैं परम सुख को और 'कर' से करने वाला समझा जाता है। परम सुख को प्रदान करता है वही शंकर है। भोले भण्डारी मुँह मागा वरदान देने में कुछ भी आगा पीछा नही सोचते। ज़रा-सी भक्ति करने वाले पर भी आपके हृदय का दया-समुद्र उमड़ पड़ता है और सबको सुखी कर डालता है।

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधर—
मुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं,

शूलं वज्रं च खड्गं परशुम—
भयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम ।
नागं पाशं च घण्टां डमरुक—
सहितं साङ्कुशं वामभागे,
नानालङ्कारदीप्तं स्फटिक—
मणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥४॥

सान्वयपदच्छेद—

शान्तम पद्मासनस्थम शशिधरमुकुटम् पञ्चवक्त्रम् त्रिनेत्रम् दक्षिणाङ्गे शूलम्, वज्रम्, खड्गम् परशुम् च अभयदम् वहन्तम् (तथा च) वामभागे नागम् पाशम् घण्टाम् डमरूकसहितम् च साङ्कुशम् नानालङ्कारदीप्तम् स्फटिकमणिनिभम् पार्वतीशम् (शङ्करम्) (अहम्) नमामि ।

भावार्थ :-

शान्त (शिवसमान तृष्णात्यागी ही शान्त रह सकता है)पद्मासन स्थित, चन्द्रशेखर, पाँच मुख वाले (ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात— ये पाँच शिवजी के मुख हैं) ईशान का अर्थ है— शासक, अघोर का अर्थ है घोर कर्म भी शिव कृपा से अघोर (मंगलमय) बन जाते हैं, तत्पुरुष का अर्थ है आत्मस्वरूप में स्थित रहना वामदेव हैं— विकारों के विजेता और सद्योजात हैं— शिशु के समान परम स्वच्छ स्वभाव का निर्विकार), तीन आखों वाले, त्रिकालदर्शी;

दाहिनी बाजू के पाँच हाथों में अधर्मियों को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूल-पीड़ा देकर धर्मात्मा बनानेवाले त्रिशूल, अनर्थनिवारक वज्र, खड, पुरुषार्थसूचक, परशु, और मोक्ष सूचक अभयप्रद हस्तमुद्रा को धारण करने वाले (तथा) बांयी बाजू के हाथों में सर्प, पास (विकार रूप पशुओं का नियमन करने के लिए पाश है । पशु प्रायः जीवों को जिसके द्वारा बांधकर वश में रखा जाता है वह प्रकृति (माया) ही पास है, पाश को हाथ में धारण करने का भाव है— माया को अपनी मुट्ठी में दबा रखना-माया के वश न होना), घंटा, डमरू (जन्म मृत्यु रागद्वेष आदिक द्वन्द्वों को अपनी मुट्ठी में दबा रखा है, इस तात्पर्य को डमरू धारण से ध्वनित किया है), और अंकुश को (धारण करने वाले) अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोधित स्फटिक मणि के सदृश उज्वल कांति वाले, पार्वतीपति को (मैं) नमस्कार करता हूँ ।

कर्पूरगौरं करुणावतारं
संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे
भवं भवानीसहितं नमामि ॥५॥

सान्वयपदच्छेद—

कर्पूर गौरम् करुणावतारम् संसारसारम् भुजगेन्द्रहारम् हृदयारविन्दे भवानीसहितम् सदा वसन्तम् भवम् (अहम्) नमामि ।

भावार्थ :–

कपूर के सदृश गोरे (स्वच्छ प्रकाशमय दोषरहित ही गौरवर्ण होता है)। करुणा के अवतार, असार संसार में सारभूत दो हजार जहरीली जीभवाले महाभयंकर शेषनाग जैसे भुजगेन्द्र को भी गले का हार बना रखने वाले, (भाव यह है कि जीवनमुक्त के सामने विरुद्ध स्वभाव के भयंकर प्राणी भी प्रतिकूलता छोड़कर अनुकूल बने रहते हैं); हृदय कमल में भवानी के सहित निरन्तर निवास करने वाले शिवजी को (मैं)नमस्कार करता हूँ।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्चसखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥६॥

सान्वयपदच्छेद :—

(हे) देव देव ! त्वम् एव मम माता, त्वम् एव पिता, त्वम् एव (मम) बन्धुः त्वम् एव विद्या, त्वम् एव द्रविणम् सर्वम् त्वम एव ।

भावार्थ :–

हे देवों के देव महादेव जी! आप ही मेरी माता हैं। आप ही मेरे पिता हैं। आप ही बन्धु हैं। आप ही विद्या हैं। आप ही

द्रव्य हैं, और कहाँ तक कहूँ? मेरा सर्वस्व सब कुछ आप ही तो हैं।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विदितमविदितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥७॥

सान्वयपदच्छेद:—

करचरणकृतम् वाक्कायजम् वा श्रवणनयनजम् मानसम् वा कर्मजम् वा विदितम् अविदितम् अपराधम् एतत् सर्वम् क्षमस्व (हे) शम्भो (तव) जय।

भावार्थ :—

हाथ या पैर से किये गये, वाणी या काया से पैदा हुए, अथवा श्रोत्र या नेत्र से उत्पन्न हुए, मन से हुए, अथवा अन्य किसी कर्म से उत्पन्न हो गये, और ज्ञात या अज्ञात जो कोई मेरे अपराध हों, इन सब को माफ कर दीजिये। हे शम्भो ! आपकी जय हो जय हो।

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।

दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः।।८।।

सान्वयपदच्छेदः—

चन्द्रोद्भासित शेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे, सर्पैः भूषित-कण्ठकर्णविवरे, नेत्रोत्थवैश्वानरे, दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बर-धरे, त्रैलोक्यसारे हरे शम्भो ! चित्तवृत्तिम् मोक्षार्थम् अचलाम् कुरु, अन्यैः कर्मभिः तु किम् ?

भावार्थ :–

चन्द्र से देदीप्यमान भालप्रदेशवाले, कामदेव का नाश करने वाले, स्वर्ग से उतरती हुई गंगाजी को जटा जूट में धारण करने वाले, सर्पों से भूषित कण्ठ एवं कर्ण विवर वाले, उठती रहती है वैश्वानर कामदाहक विद्युत शक्ति की लाटें जिससे वैसे तृतीय नेत्रवाले, लम्बे लम्बे दाँत वालों हाथी के चर्म का सुन्दर वस्त्र बनाकर धारण करने वाले, त्रिलोकी के सार, दुःख को हरकर सुख करने के लिए भगवान् शंकर के स्वरूप-चितन में अपनी-अपनी चित्त वृत्ति को मोक्ष प्राप्ति के लिये स्थिर कीजिये । दूसरे महत्वशाली कर्मों की तो क्या आवश्यकता है? कुछ भी नहीं । शिवचिंतनमें वृत्ति टिकाली तो इसमें सब कुछ आगया ।

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।।९।।

सान्वयपदच्छेदः—

हरिःॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि, तत् रुद्रः नः प्रचोदयात् ।

भावार्थ :—

अज्ञान को हरने वाले, ज्ञानस्वरूप नवद्वार विशिष्ट पुरों में निवास करनेवाले तत्पद के लक्ष्यार्थ शिवस्वरूप का हम गुरु एवं शास्त्र द्वारा ज्ञान प्राप्त करें, और ज्ञान की स्थिरता के लिए उन तत्पुरुष महादेव जी का ध्यान करें, ताकि पापको रुलाने वाले या रोग नाशक वे महादेव जी हमें परमार्थ पथ में अटल रहने की प्रेरणा करते रहें ।

भगवान् विष्णु को नमस्कारः—

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं
सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षस्थलकौस्तुभश्रियं
नमामि विष्णुं शिरसाचतुर्भुजम् ॥१०॥

सान्वयपदच्छेदः—

सशङ्खचक्रम् सकिरीटकुण्डलम् सपीतवस्त्रम् सरसीरुहेक्षणम् सहारवक्षस्थलकौस्तुभश्रियम् चतुर्भुजम् विष्णुम् शिरसा (अहम्) नमामि ।

भावार्थ :—

शंख, चक्र, किरीट एवं कुंडलसे सुशोभित, पीताम्बर-धारी, कमल नयन, तथा वैजयन्तीमालासे युक्त, जिनका वक्षस्थल कौस्तुभमणि से विशेष शोभा पारहा है, उन चार भुजाधारी भगवान विष्णु को नमस्कार करता हूँ।

श्री दुर्गामाता का स्मरण—

आपत्सुमग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गेकरुणार्णवेशिवे ।

नैतच्छठत्वं ममभावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥११॥

सान्वयपदच्छेदः—

दुर्गे करुणार्णवे शिवे ! आपत्सुमग्नः (अहम्) त्वदीयम् स्मरणम् करोमि, एतत् मम छठत्वम् न भावयेथाः, (यतो हि) क्षुधातृषार्ता (बालकाः) जननीम् स्मरन्ति ।

भावार्थ :—

हे दुर्गे, हे दयासागर महेश्वरी ! जब मैं किसी विपत्तिमें पड़ता हूँ तो आपका ही स्मरण करता हूँ, इसे आप मेरी दुष्टता मत समझना, क्यों कि भूखे प्यासे बालक अपनी माँ को ही याद किया करते हैं ।

भगवान् सूर्य को प्रणाम—

सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥१२॥

सान्वयपदच्छेदः—

सप्ताश्वरथम् आरूढम् श्वेतपद्मधरम् प्रचण्डम् कश्यपात्मजम् तम् देवम् सूर्यम्, अहम् प्रणमामि !

भावार्थ :—

सात घोड़ोंवाले रथ पर आरूढ़, हाथ में श्वेत कमल धारण किये हुए प्रचण्ड तेजस्वी कश्यप कुमार सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ ।

श्री गुरूदेव एवं आचार्य को नमस्कारः—

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥१३॥

सान्वयपदच्छेदः—

ब्रह्मानन्दम् परमसुखदम् केवलम् ज्ञानमूर्तिम् द्वन्द्वातीतम् गगनसदृशम् तत्वमस्यादिलक्ष्यम्, एकम् नित्यम् विमलम्,

अचलम् सर्वधीसाक्षिभूतम् भावातीतम् त्रिगुणरहितम् तम् सद्गुरुम् नमामि ।

भावार्थ :–

ब्रह्मानन्दरूप, परमसुखके दाता; आज्ञानरहित, ज्ञान-स्वरूप, रागद्वेषादि द्वन्द्वों से पर, आकाशवत् असंग 'तत्त्वमसि' आदिक महावाक्यों के लक्ष्यार्थ एक (अद्वैत) नित्य त्रिकालाबाध्य; अमल, अचल; सब की बुद्धि के साक्षी; षड्भावविकारोंसे रहित, त्रिगुणातीत, उस सद्गुरु को कोटिशः नमस्कार करता हूँ ।

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ।।१४।।

सान्वयपदच्छेद:—

केशवम् बादरायणम् शङ्करम् शङ्कराचायम् सूत्रभाष्य-कृतौ भगवन्तौ पुनः पुनः (अहम्) वन्दे ।

भावार्थ :–

भगवान् विष्णु के अवतार, यानी साक्षात् विष्णु, व्यासदेव, और भगवान् शंकर के अवतार, यानी साक्षात् शंकर के अवतार, यानी साक्षात् शंकर शंकराचार्यजी महाराज, ब्रह्मसूत्रऔर उसपरशारीरिकभाष्य की रचना करनेवाले, इन दोनों भगवत्स्वरूपों की बारंबार मैं वन्दना करता हूँ ।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१५॥

सान्वयपदच्छेदः—

ईश्वरः गुरुः आत्मा इति मूर्तिभेदविभागिने व्योमवद्-व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ।

भावार्थ :—

ईश्वर, गुरु और आत्मा इस प्रकारकी मूर्तियों के भेद से विभक्त होने पर भी (वास्तव में तो) आकाशकी तरह व्याप्त, अविभक्त स्वरूप, दक्षिणामूर्ति शंकर को नमस्कार हो।

पुष्पाञ्जलिमन्त्रः

हरिः ॐ

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि
धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

सान्वयपदच्छेदः—

देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त तानि प्रथमानि धर्माणि

आसन्, तेह महिमानः नाकम् सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति ।

भावार्थ :–

विद्वानों ने देव पूजा, संगतिकरण तथा दानादि सत्कर्मों द्वारा यज्ञस्वरूप विष्णु भगवान् का यजन किया, वे पूजादि सत्कर्म प्रथम (प्रारंभसे) धर्म थे । वे विद्वान् लोग उन सत्कर्मों के प्रभाव से महिमाशाली बनकर स्वर्ग परमसुख रूप परमधाम में गये, जहाँ कि पूर्व समय के साधक लोग देव बनकर पहुँचे हुए हैं ।

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने
नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।
स मे कामान् कामकामाय मह्यम्
कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ॥१७॥

सान्वयपदच्छेद:—

राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने वैश्रवणाय वयम् नमः कुर्महे मे कामेश्वरः सः वैश्रवणः काम कामाय मह्यम् कामान् ददातु ।

भावार्थ :–

राजाधिराज अकारणही सहायता करने के आदी कुबेरको हम सब नमस्कार करें । मेरी कामनाओं के परीक्षक वह कुबेर भगवान् मनुष्य लोक से लेकर ब्रह्मलोक तककी

तथा मोक्ष की कामनावाले मुझ को ब्रह्मलोक तक के भोग तथा मोक्ष दें ।

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥१८॥

सान्वयपदच्छेदः—

वैश्रवणाय महाराजाय कुबेराय नमः ।

वैश्रवण कुलोत्पन्न महाराज कुबेर को नमस्कार हो ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥१९॥

सान्वयपदच्छेदः—

विश्वतश्चक्षुः उत विश्वतोमुखः विश्वतोबाहुः उत विश्वतस्पात् द्यावाभूमी जनयन् ॐ देवः एकः बाहुभ्याम् (तथा च) पतत्रैः सम्धमति ।

भावार्थ :–

सब ओर आँखवाला– अर्थात् समस्त जीवों के कर्म, विचार तथा समस्त घटनाओं को अपनी दिव्यशक्ति द्वारा नित्यनिरंतर देखते (जानते) रहनेवाला, और सब तरफ

मुखवाला– अर्थात् श्रद्धा और भक्ति भरे भक्तों द्वारा जब कभी एवं जहाँ कहीं समर्पित की गई भोजन योग्य वस्तु (पत्रं पुष्पम्) को सहर्ष भोग लगानेवाला, सर्वत्र हाथवाला अर्थात् सर्वदेश काल के प्रत्येक पदार्थ को एक साथ पकड़ने में तथा अपने आश्रित जनों के संकटों का नाश करके उनकी रक्षा करने में समर्थ, और सब जगह पैखाला– अर्थात् जिस-जिस काल में एवं जिस-जिस देश में उनके भक्त श्रद्धा भक्ति से उन्हें बुलावें उस उस कालमें, और उस उस देश में एकही साथ पहुँच सकनेवाला, आकाश पृथ्वी आदि अनेक नामरूपों को अपनी माया से उत्पन्न करता हुआ भी प्रणवरूप परमात्मा वस्तुतः एक अद्वैत ही है । वह परमात्मदेव मनुष्यादि प्राणियों को दो दो हाथों से, तथा पक्षी पतंग आदि को पंखों से संयुक्त करता है– अर्थात् समस्त जीवों को आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न शक्ति एवं साधनों से संपन्न करता है ।

ॐ नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानी च ।
भक्त्या दत्तानि पूजार्थं गृहाण परमेश्वर ॥२०॥

सान्वयपदच्छेदः—

परमेश्वर यथाकालोद्भवानि च नानासुगन्धपुष्पाणि (तव) पूजार्थंम् (मया) भक्त्या दत्तानि गृहाण ।

भावार्थ :–

हे परमेश्वर मौसम के अनुसार उत्पन्न हुए, और अनेक प्रकार की दिव्य सुगंधीवाले पुष्पों को मैंने आपकी पूजा के लिये भक्ति पूर्वक अर्पण किये हैं । कृपया स्वीकार कीजिये।

हरिः ॐ तत्सत् मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥२१॥

सान्वयपदच्छेदः—

हरिःॐ तत् सत् मन्त्रपुष्पाञ्जलिम् (अहम्) समर्पयामि ।

भावार्थ :–

जो हरि तथा ॐ है वही तत् तथा सत् है उन्हें अभिमंत्रित पुष्पों की श्रद्धांजलि को मैं समर्पित्त करता हूँ ।



श्रीकृष्ण-मन्दिर के सामने

हरिः ॐ

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥ १ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

अनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे सहस्र नाम्ने सहस्रकोटीयुगधारिणे शाश्वते पुरुषाय नमः नमः अस्तु ॥

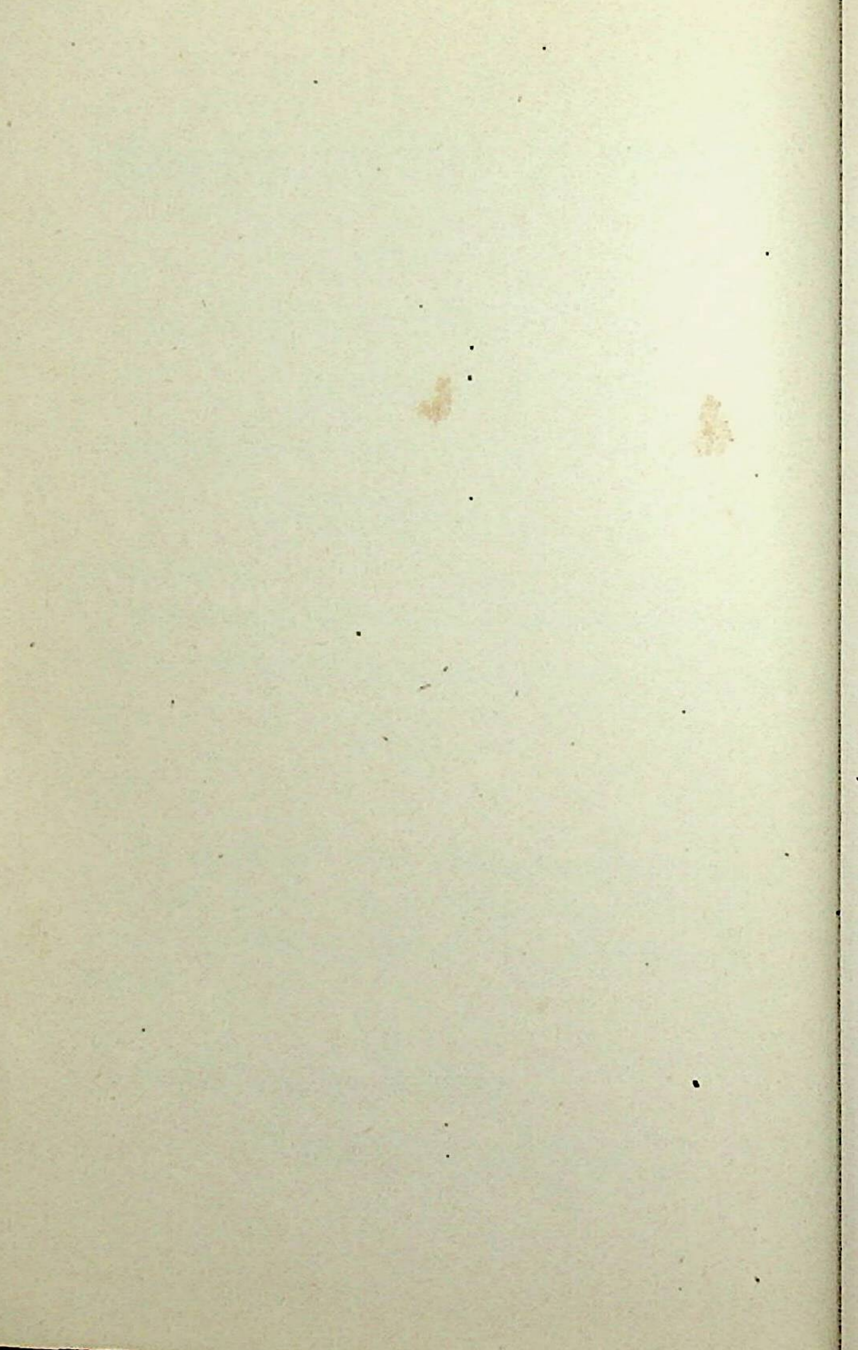
भावार्थ :—

देश कालवस्तुकृत अंत से रहित अनेक मूर्ति (शरीर) वाले असंख्य हाथ, पैर, आँख, उरु शिरवाले नाना नामवाले, अनंतकोटि युगों के धारक (जुग जूने) नित्य पुरुषको नमन हो नमन हो ।

न केवलंमद्हृदये स विष्णु-
राक्रम्यलोकानखिलानवस्थितः ।



साधनासदन देवालय के मध्य में स्थित श्रीकृष्ण मन्दिर मे विराजमान अर्चावतार मुरली-मनोहर भगवान् श्रीकृष्ण एवं दांये लक्ष्मीनारायण तथा बांये राधाकृष्ण की छोटी प्रतिमायें ।



समेत्वदादींश्चपितः समस्तान्
समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥ २ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

(हे) पितः ! सः विष्णुः केवलम् मत् हृदये न, (सः तु) अखिलान् लोकान् आक्रम्य अवस्थितः सः सर्वगः मे त्वदादीन् च समस्तान् समस्त चेष्टासु युनक्ति ।

भावार्थ :—

श्री प्रल्हाद जी ने कहा कि हे पिता जी ! वह भगवान् विष्णु केवल मेरे ही हृदय में हैं ऐसा नहीं, वह तो सम्पूर्ण लोको को व्याप्त करके स्थित हैं । वहीं सर्वनियामक प्रभु मुझको और आपको तथा सबको सभी चेष्टाओं में जोड़ रहा है ।।

योन्तः प्रविश्यममवाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिल शक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरण श्रवण त्वगादीन्
प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥३॥

सान्वयपदच्छेदः—

यः अखिलशक्तिधरः (श्रीहरिः) स्वधाम्ना अन्तः प्रविश्य इमाम् प्रसुप्ताम् ममवाचम् सञ्जीवयति, अन्यान् हस्तचरण

श्रवण त्वगादीन् प्राणान् च (सञ्जीवयति) पुरुषाय भगवते तुभ्यम् नमः ।

भावार्थः—

भावार्थ :—

ध्रुव जी बोले— जो सर्वशक्तिसम्पन्न श्री हरि मेरे अन्तःकरण में प्रवेश कर अपने तेज से मेरी सोई हुई वाणी को सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर कान और तेत्वचा आदि सर्व इन्द्रियों को भी चैतन्य प्रदान करते हैं, वे अन्तर्यामि भगवान् आप ही हैं, अतः आपको प्रणाम है ।

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुण बिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्द नेत्रात्
कृष्णात् परं किमपितत्त्वमहं न जाने ॥४॥

सान्वयपदच्छेदः—

वंशीविभूषितकरात् नवनीरदाभात्, पीताम्बरात् पूर्णेन्दु-सुन्दरमुखात् अरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् अरविन्दनेत्रात् अपि परम तत्त्वम् (अस्ति) किम् ? (इति) अहम न जाने ।

भावार्थ :—

वंशी से सुशोभित है कर कमल जिसका ऐसे नवीन मेघ के समान कान्ति वाले, पितास्बरधारी एवं पूर्ण चन्द्रमा के माफिक सुन्दर मुखवाले बालसूर्य के समान लाल अधरोष्ठ

वाले, कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण से भी उत्तम तत्त्व कोई है,– यह मैं नहीं जानता। अर्थात् हमारे परमतत्त्व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं।

कृष्णत्वदीय पदपङ्कजपञ्जरान्ते
अद्यैवमेविशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाण समये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥ ५ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

कृष्ण अद्यैव मे मानसराजहंसः त्वदीय पदपङ्कजपञ्जरान्ते विशतु (हि) प्राणप्रयाणसमये। कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ ते स्मरणम् कुतः ?

भावार्थ :–

हे हमारे सर्वस्व कृष्ण प्रभु! अभी ही हमारा मन रूपी हंस आपके चरण कमल रूपी पिंजरे में प्रवेश कर जाय, क्योंकि प्राण प्रयाण के समय जब कफ, वात और पित्त से कण्ठ भर जायेगा, तब भला आपका स्मरण कैसे होगा? ।।

जगदादिमनादिमजं पुरुजं
शरदम्बरतुल्यतनुं वितनुम्।
धृतकंजरथाङ्गगदं विगदं,
प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ ६ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

अनादिम् जगदादिम् अजम् पुरुजम् वितनुम् शरदम्बर-तुल्यतनुम् विगदम् धृतकञ्जरथाङ्गगदम् तम् रमाधिपतिम् अहम् प्रणमामि ।

भावार्थ :–

जो स्वयं अनादि एवं जगत के आदिकारण हैं तथा स्वयं अजन्मा होकर भी बहुत रूपों में प्रकट होते हैं, जो निराकार होकर भी शरद ऋतु के स्वच्छ आकाशवत् शरीर वाले हैं, जो विशुद्ध होते हुए भी कमल चक्र एवं गदा को धारण करने वाले हैं, ऐसे रमा (लक्ष्मी) के अधिपति भगवान् विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ ।

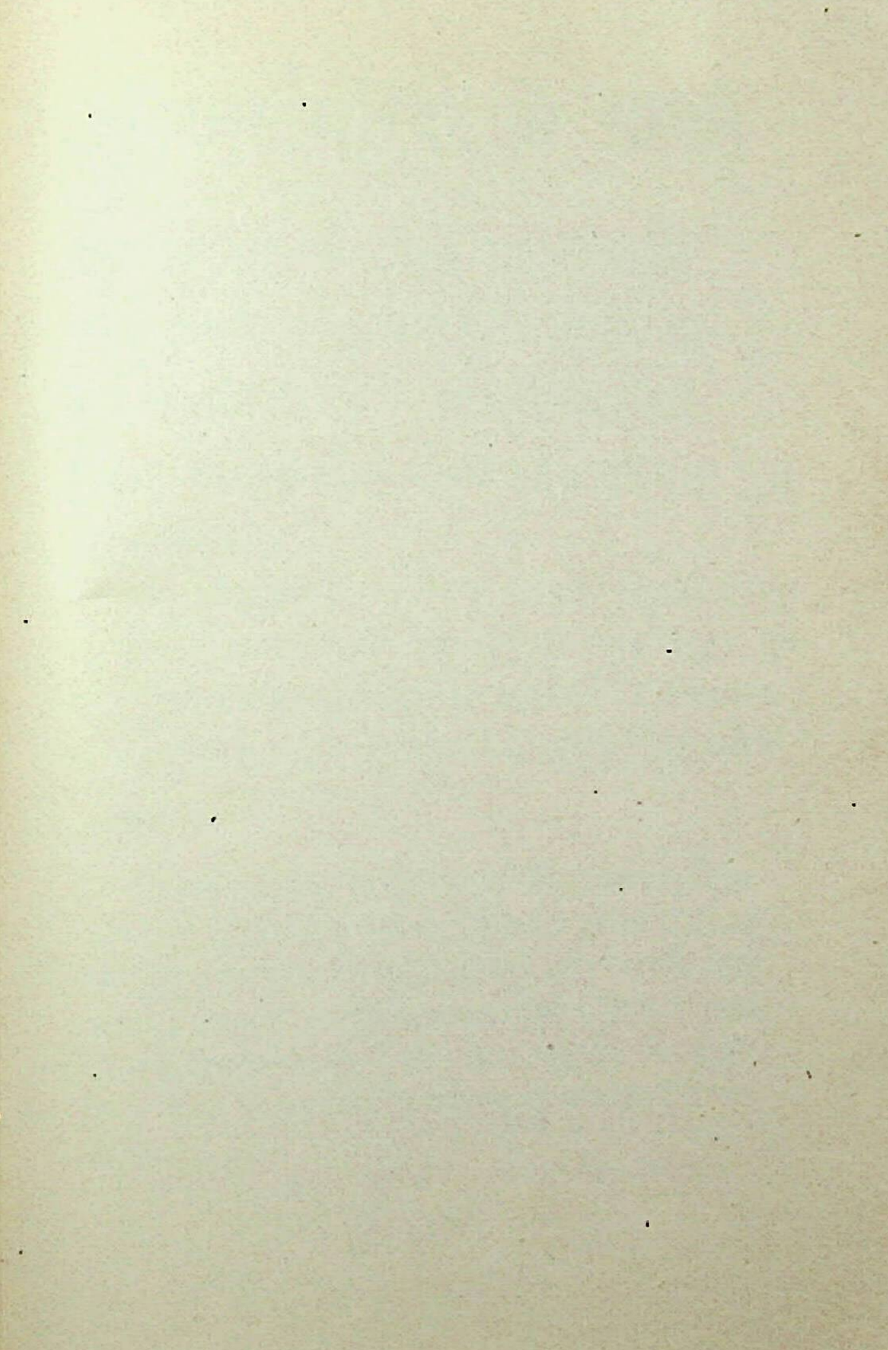
श्याम प्रेममयीराधा राधाप्रेममयो हरिः ।
जीवने निधने नित्यं राधाश्यामौ गतिर्मम ।। ७ ।।

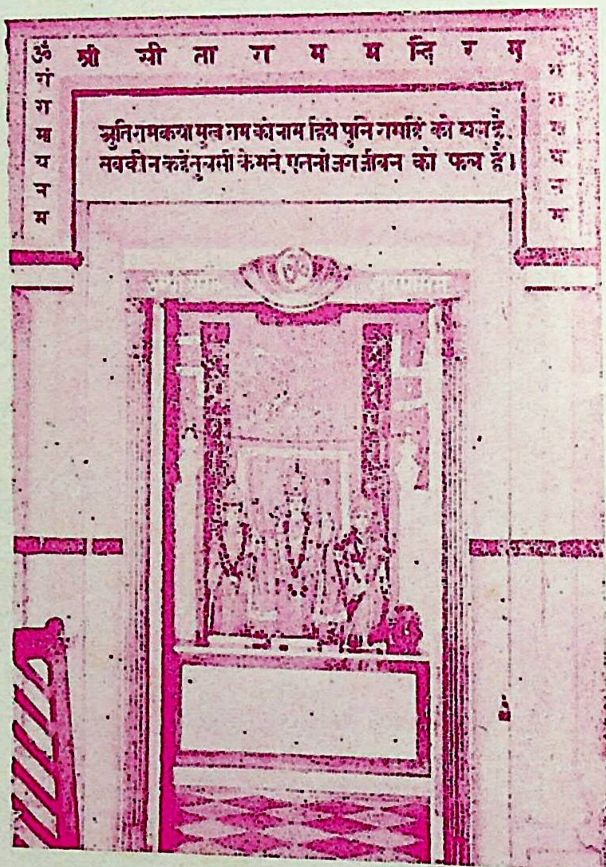
सान्वयपदच्छेदः—

श्याम प्रेममयी राधा (च) राधाप्रेममयः हरिः जीवने निधने राधाश्यामौ नित्यम् मम गतिः (स्तः) ।

भावार्थ :–

श्याम (कृष्ण) प्रेममयी राधा हैं, और राधा के प्रेमस्वरूप श्याम (कृष्ण) हैं । इस जीवन में तथा शरीर छोड़ने के अनन्तर अर्थात् इस लोक एवं परलोक में वही राधा-श्याम एकमात्र हमारे गति हैं ।





साधनासदन देवालय के राम मन्दिर में विराजमान भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण जी एवं सीता जी के साथ ।

श्रीराम मन्दिर के सामने

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा-
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ १ ॥

सान्वयपदच्छेदः—

यत् मायावशवर्त्ति अखिलम् विश्वम् ब्रह्मादिदेवासुरा यत् सत्त्वात् यथा रज्जौ अहेः भ्रमः सकलम् अमृषा एव भाति एकम् एव यत् पादप्लवम् हि भवाम्भोधेः तितीर्षावताम् तम् अशेषकारणपरम् रामाख्यम् ईशम् हरिम् अहम् वन्दे ।

भावार्थ :—

जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादिदेवता, और असुर हैं, जिनकी सत्तासे रस्सी में सर्पके भ्रमकी भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्यही प्रतीत होता है, और जिसके केवल चरणही भवसागर से तरनेकी इच्छा वालों के लिए एकमात्र नौका हैं, उस समस्त कारण से पर (सब कारणोंके कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहानेवाले भगवान् श्री हरि की मैं वन्दना करता हूँ ।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुल मङ्गलप्रदा ।। २ ।।

सान्वयपदच्छेद:—

या रघुनन्दनस्य मुखाम्बुजश्री अभिषेकतः प्रसन्नताम् न गता तथा वनवासदुःखतः न मम्ले सा मुखाम्बुजश्री मे सदा मञ्जुल मङ्गलप्रदा अस्तु ।

भावाथ .—

रघुकुल को आनन्द देनेवाले श्री रामचन्द्र जी के मुखारविन्दकी जो शोभा राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक की बात सुनकर) न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई; और न वनवास के दुःखसे मलिनही हुई, वह (मुखकमल की छबि) मेरे लिये सदा सुन्दर मंगलों की देनेवाली हो ।।

नीलाम्बुज श्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।। ३ ।।

सान्वयपदच्छेद:—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम् सीतासमारोपितवामभा-

गम् पाणौ महासायकचारुचापम् रघुवंशनाथम् रामम् (अहम्) नमामि ।

भावार्थ :–

नीले कमलके समान श्याम, और कोमल जिनके अंग हैं, श्री सीता जी जिनके वाम भागमें विराजमान हैं, और जिनके हाथोंमें (क्रमशः) अमोघ बाण और सुन्दर धनुष है, रघुवंशके स्वामी श्रीराम चन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।।

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणसरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥४॥

सान्वयपदच्छेदः यथाश्रुतान्वयः—

भावार्थ :–

जिनका शरीर जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर (श्यामवर्ण) एवं आनन्दघन है, जो सुन्दर वल्कलका) पीतवस्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथों में बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकसके भार से सुशोभित है, कमलके समान विशालनेत्र हैं और मस्तक पर जटा जूट धारण किये हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्री सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में चलते हुए, आनन्द देने वाले श्रीरामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ।।

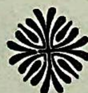
श्री हनुमानजी को नमस्कारः—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥५॥

सान्वयपदच्छेदः यथाश्रुतान्वयः—

भावार्थ :—

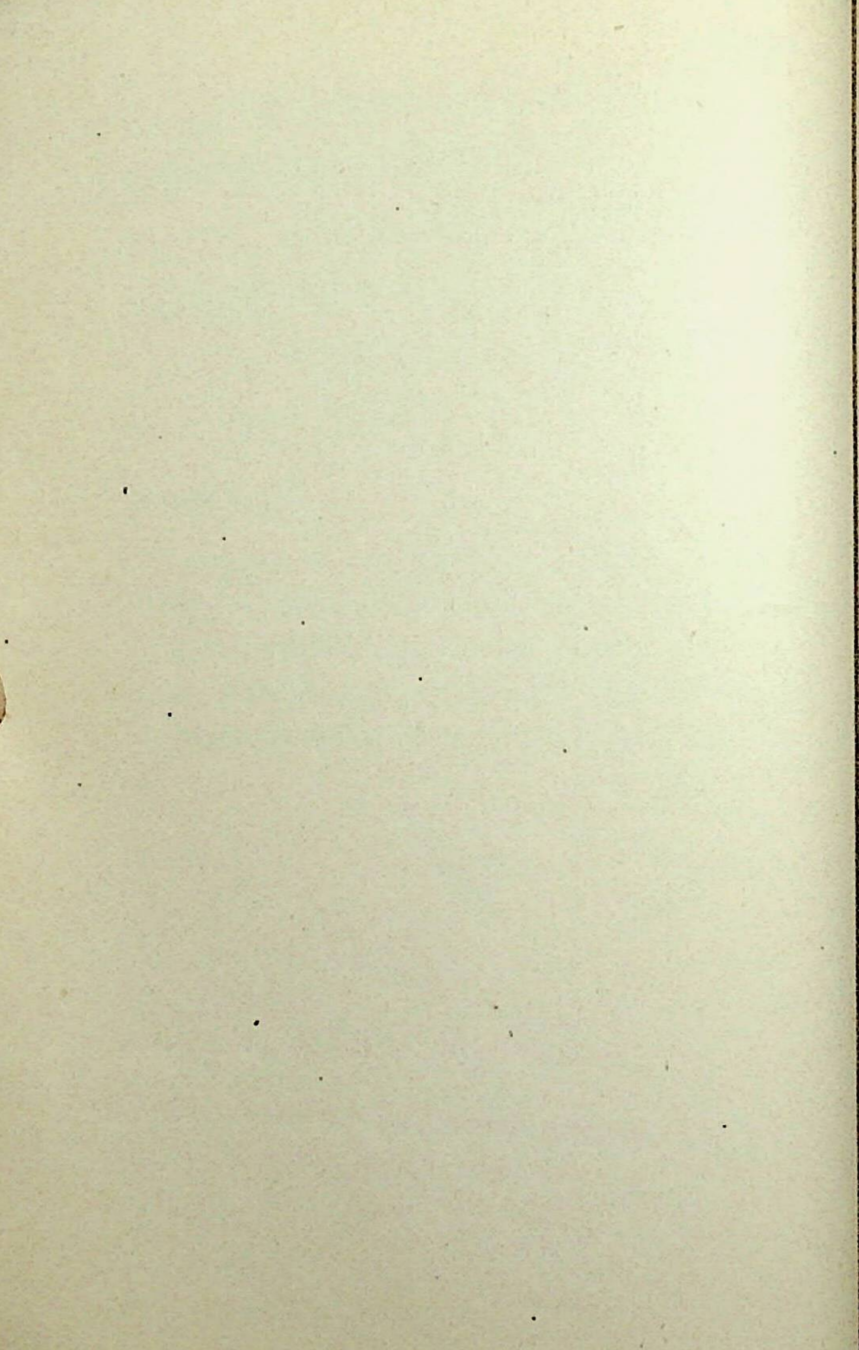
अतुलबल के धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरू) के समान कान्ति युक्त शरीरवाले, दैत्यरूपीवन को ध्वंस करनेके लिए अग्निरूप, ज्ञानियों के अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्री रघुनाथजी के प्रिय भक्त पवन पुत्र श्री हनुमानजी को मैं प्रणाम्म करता हूँ ।।



मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।



साधनासदन देवालय स्थित राम मन्दिर में विराजमान
श्री हनुमान जी महाराज ।



॥ श्री महिम्नःस्तोत्रम् ॥

हरिः ॐ

गजाननं भूतगणाधिसेवितं, कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं, नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥

हरिः ॐ

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

सान्वयपदच्छेदः श्री शिवपक्षे–

(हे) हर ते महिम्नः परम् पारम् अविदुषः स्तुतिः यदि असदृशी तत् ब्रह्मादीनाम् अपि गिरः त्वयि अवसन्नाः अथ सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन् अवाच्यः, मम अपि स्तोत्रे एषः परिकरः निरपवादः ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में –

अज्ञान-पाप-तापको हरनेवाले हे शिवजी (निर्गुण-निराकार निर्मायिक आपकी) महिमाको अन्तिम अवधितक-अर्थात् पूर्णरूपसे न समझनेवाले-अनजान आदमीके द्वारा की हुई आपकी स्तुति यदि आपके स्वरूप के योग्य नहीं है, अर्थात्

जैसी होनी चाहिये वैसी नहीं हो पाई है, तब तो वाणी के अध्यक्ष ब्रह्मादि देवों की भी वाणी अर्थात् स्तुति आपके लिये अयोग्य ही है, और जो कदाचित् सब कोई अपनी अपनी बुद्धि शक्ति के अनुरूप स्तुति करने पर निर्दोष है (तब तो) मेरा भी आपकी स्तुति करने में यह (महिम्नः स्तोत्रनिर्माणरूप) प्रयत्न निर्दोष ही है किसी प्रकार निन्दनीय होही नहीं सकता ।।१।।

सान्वयपदच्छेद :— श्री विष्णुपक्षे—

अयि परम! ब्रह्मादीनाम् गिरः पारम् विदुषः ते महिम्नः यदि स्तुतिः तत् (ते महिम्नः) असदृशी अवसन्नाः अपि अस्तु अथ अतिपरिणामावधि स्वम गृणन् सर्वः ते अवाच्यः । स्तोत्रे अपि मम अहः एषः अनिरपवादः परिकरः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे लक्ष्मी पति भगवन्! ब्रह्मा आदि की वाणी का पार जानने वाले आपकी महिमा की यदि स्तुति हो तो वह आप की महिमा के असदृश एवं अतितुच्छ भी क्यों न हो सार्थक ही है । क्योंकि उसके बाद आपकी अतिमात्र स्तुति करने वाले सभी आपके भक्त इस योग्य हो जाते हैं कि आप उनसे उनके सन्मुख आकर बातचीत करने लगते हैं (जैसे प्रल्हाद नारद आदि से आप बातचीत करते थे) ऐसे आपके स्तोता के लिए भी मेरा सदा यह दूषण रहित नमस्कार है ।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः

पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्री शिवपक्षे

(हे हर !) तव महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानम् अतीतः यम् श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्त्या चकितम् अभिधत्ते सः कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः अर्वाचीने पदे तु कस्य मनः न पतति (कस्य च) वचः न (तन्मयं भवति)।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में –

हे हर ! आपका माहात्म्य तो वाणी एवं मन के मार्ग (विषय) से परे या अलग है, क्योंकि जिस आप या आपके निर्गुण निराकार अनिर्वचनीय माहात्म्य या स्वरूप को वेद भी भाग त्यागलक्षणादिद्वारा (प्रतिपादन करने पर भी कहीं अनुचित वर्णन न हो जाये) इस भय से आश्चर्यान्वित होता हुआ प्रतिपादन करता है, और उस सगुण निराकार परमेश्वर कितने ही (अनन्त) प्रकार के गुणोंवाला है, तात्पर्य कि सान्तवाणी या बुद्धि अनन्त का गान या ज्ञान किसी प्रकार भी कर नहीं पाती, तथा वह परमात्मा किस शब्द या अंतःकरण की वृत्ति का विषय हो सकता। स्वयं विषयी या निर्विषय होने के कारण वाच्यरूप से किसी का भी नहीं हो सकता तथापि हे भक्ताधीन भोलेनाथ ! आपके नवनिर्मित, परम रमणीय, सगुणसाकार स्वरूप में तो किसका मन नहीं रम जाता? और किसकी वाणी नहीं तन्मय हो जाती? अर्थात् परम रमणीय आपके सगुणसाकाररूप का गुणगान या वर्णन करने में सब किसी के मनवाणी मस्त हो जाते हैं ।।२।।

सान्वयपदच्छेदः—श्री विष्णुपक्षे—

तव महिमा च वाङ्मनसयोः पन्थानम् अतीतः । अतद्व्यावृत्त्या यम् चकितम् श्रुतिः अपि अभिधत्ते, सः कस्य स्तोतव्यः ? कतिविध गुणः ? कस्य विषयः ? तु अर्वाचीने पदे कस्य मनः न पतति कस्य वचः न पतति ?

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

आपकी महिमा वाणी और मन से अगोचर है, आत्मभिन्न वस्तु के निषेध द्वारा श्रुति भी चकित होकर आपकी ही महिमा का वर्णन करती है ।

ऐसे आपकी स्तुति कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं कर सकता । आप कितने प्रकार के गुणों वाले हैं? अर्थात् अनन्त गुणों के अगार हैं या निर्गुण हैं । आप किसके विषय हैं? अर्थात् किसीके विषय नहीं हो सकते । हाँ किन्तु आपके सगुण स्वरूप में किसका मन नहीं लगेगा? अर्थात् सभी का लगेगा। किसकी वाणी प्रवृत्त नहीं होगी? अर्थात् सभी की वाणी प्रवृत्त होगी ।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ।।३।।

सान्वयपदच्छेदः श्रीशिवपक्षे—

(हे) ब्रह्मन् मधुस्फीता परमम् अमृतम् वाचः निर्मितवतः

तव सुरगुरोः अपि वाक् किम् विस्मयपदम् तु पुरमथन मम एताम् वाणीम् भवतः गुणकथनपुण्येन पुनामि इति अस्मिन् अर्थे बुद्धिः व्यवसिता ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में –

हे ब्रह्मस्वरूप शिवजी! शहद में सनी हुई अर्थात् संसार के समस्त मधुर पदार्थों से भी अत्यन्त मधुर, सर्वथा निर्दोष अमृतमय वेदवाणी को (निःश्वासरूप से) निर्माण करने वाले सर्वज्ञ सर्वशक्ति अन्तर्यामी आपको देवगुरु (बृहस्पति जी)की भी वाणी (स्तुति) क्या आश्चर्य में डालने वाली हो सकती है? अर्थात नहीं, सर्वश्रेष्ठ वेदवाणी की रचना करने वाले आपके लिए देवराज या देवगुरुकृत स्तुति भी विस्मय-ज़नक नहीं बन सकती। फिर भी त्रिपुरासुर का उद्धार करने वाले हे शिवजी मैं तो अपनी इस (अमंगल) वाणी को आपके गुणगान करने से उत्पन्न होने वाले पुण्य के द्वारा पावन कर लूं, इसलिए इस (आपके गुणगान 'स्तुति' रूप) कार्य में मेरी बुद्धि तत्पर हुई है।।३।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

हे पुरमथन ब्रह्मन् ! वाचः परमम् अमृतम् निर्मितवतः सुरगुरोः तव मधुस्फीता वाक् अपि किम् विस्मयपदम ? मम तु एताम् वाणीम् गुणकथनपुण्येन पुनामि इति अर्थे भवतः बुद्धिः व्यवसिता ।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में–

क्षीरसागर अथवा गोकुलरूपी पुर में निवास करने वाले हे विष्णो! समस्त वाणी का निरतिशय सार पूर्णरूप से जानने

वाले हिरण्यगर्भादि सब देवों के गुरु आपको माधुर्य से व्याप्त वाग्देवी सरस्वती भी क्या आश्चर्यचकित करने वाली हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। तो फिर मेरी वाणी का तो कहना ही क्या है। इस लिए मैं स्वयं स्तुति करने में प्रवृत्त नहीं, हुआ हूँ। मैं तो यही समझता हूं कि) ममता-मोह में पड़ी हुई भक्त की उस वाणी को अपने गुणानुवाद के पुण्य से पवित्र किये देता हूं इस प्रयोजन को लक्ष्य में रखकर आपकी बुद्धि ही हमसे स्तुति कराने के लिए प्रवृत्त हुई है ।।३।।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तु व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ।।४।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

वरद ! जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् त्रयीवस्तु गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तम् यत् इह तत् तव ऐश्वर्यम् विहन्तुम् एके जडधियः अभव्यानाम् रमणीयाम् अरणीम् अस्मिन् व्याक्रोशीम् विदधते ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे वरदान देकर सबको निहाल कर देने वाले शम्भो ! जगत का उदय (सृजन) पालन एवं प्रलय (व्यवस्थापन) करने वाला, ऋक्, यजु, साम आदिक सभी वेद जिसका वस्तु (वास्तविक) रूप से प्रतिपादन करते हैं, तथा सत्त्व, रज और तमोंगुणों के भेद से भिन्न (ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन) तीनों, शरीरों में— मूर्तियों में विभक्त हुआ, जो यहां (ब्रह्माण्डभर

में) प्रसिद्ध आपका ऐश्वर्य (महात्म्य) है, उसका खण्डन करने के लिए कई एक जड़बुद्धि वाले (नास्तिक लोक) कुबुद्धि लोगों को अच्छी लगने वाली, (लेकिन असल में) बुरी अहितकर आपके ऐश्वर्य के विषय में मिथ्या कल्पनाओं की चीं-पों मचाते रहते हैं। (बकवास करते हैं) ।।४।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

वरद ! यत् तव जगत् उदय-रक्षा-प्रलयकृत् त्रयीवस्तु गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तम् ऐश्वर्यम् तत् विहन्तुम् एके जडधियः अस्मिन् अभव्यानाम् रमणीयाम् अरमणीम् व्याक्रोशीम् इह विदधते ।।४।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे सकल अभीष्ट वस्तुओं का दान देने वाले प्रभो! जो आपका जगत् की उत्पत्ति रक्षा और प्रलय करने वाला तीनों वेदों का तात्पर्य रूप सत्त्व, रज, व तम गुणों से विभक्त ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर रूप तीनों मूर्तियों के रूप में विन्यस्त ऐश्वर्य है, उसका खण्डन करने के लिए कुछ जड़बुद्धि लोग इस जगत् में अभव्यों को रमणीय प्रतीत होने वाली किन्तु वस्तुतः अरमणीय खण्डनात्मिका वाणी बोलते रहते हैं। ।।४।।

अब उन जड़बुद्धियों की बकवास का नमूना दिखलाते हैं—

किमीहः किङ्कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।

अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः

कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(त्रिभुवन-निर्माण-समये) सः धाता किमाधारः, किमीहः, किङ्कायः, किमुपायः किम् उपादानः त्रिभुवनम् सृजति, इति अयम् कुतर्कः अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अनवसरदुः स्थः जगतः मोहाय कांश्चित् हतधियः मुखरयति ॥

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

त्रिभुवन निर्माण के समय वह त्रिभुवननिर्माता ब्रह्मा किस आधार पै बैठ के किस इच्छा से-किसके लिए, किस शरीर से, किन उपायों (साधनों या औजारों) से और किन कारणों (पदार्थों या मसालों) से तीनों लोकों को या ब्रह्माण्ड को पैदा करता है इस तरह का यह कुतर्क जिनका ऐश्वर्य तर्कका विषय नहीं बन सकता ऐसे आपके सम्बन्ध में अवकाश न पाकर डांवांडोल हुआ भी, जगत् को अज्ञान या भ्रम में फंसा रखने के लिए, कुछेक नष्टबुद्धि अथवा बुद्धीहीन जनों को वाचाल तथा बकवादी बनाता रहता है ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णपक्षे—

सःखलु धाता किमीहःकिकायः किम् उपायःकिम आधारः किम् उपादानः च त्रिभुवनम् सृजति, इति अतर्क्यश्वर्ये—अनवसरदुः स्थः अयम् कुतर्कः जगतः मोहाय कांश्चित् हतधियः मुखरयति ॥५॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

वह परमेश्वर किसकी चेष्टा से, किस शरीर से, किस सहकारी कारण से, किस आधार पर रखकर और किस उपादान से तीनों लोकों की रचना करता है इस प्रकार तर्कातीत ऐश्वर्य वाले आपके विषय में बिना अवकाश के प्रयुक्त, अत एव दुष्ट यह कुतर्क जगत को मोह में डालने के लिए कुछ हतबुद्धि को मुखर करता है ।।५।।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ।।६।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

अमरवर ! इमे लोकाः अवयववन्तः अपि किम् अजन्मानः, किम् ? भवविधिः जगताम् अधिष्ठातारम् अनादृत्य भवति, किम् ? वा अनीशः कुर्यात् भुवनजनने कः परिकरः ? यतः इमे मन्दाः त्वाम् प्रति संशेरते ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

देवताओं में श्रेष्ठ हे महादेव जी! ये (प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाले) पृथ्वी आदिक लोक या अवलोकन के विषय पदार्थ सावयव होने पर भी क्या जन्मरहित हो सकते हैं? (नहीं हो सकते, क्योंकि जो पदार्थ अवयव वाले हैं, वे सबके सब उत्पत्ति स्थिति एवं नाश सहित ही हुआ करते हैं और) क्या जगत् की उत्पत्ति कार्य भू आदि चतुर्दश भुवनों के कर्ता के

बिना ही हो सकता है? नहीं कर्ता के बिना कोई भी कार्य कभी भी हो ही नहीं सकता, यदि (कहा जाय कि) ईश्वर से भिन्न या सामर्थ्यहीन कोई जीव ही (जगत का) करने वाला हो सकता है, तो भू आदि भुवनों के उत्पन्न करने में सामर्थ्यहीन उस जीवरूपी कर्ता के पास जगत के पैदा करने के लिए कौनसी साधन सामग्री है? अर्थात् जीव के पास कुछ भी साधन संपत्ति न होने के कारण वह कर्ता नहीं हो सकता, तो फिर वे लोग वैसी बेसिर पैर की कुशंकायें क्यों किया करते हैं? इसलिए कि वे मन्दभाग्य और मंदबुद्धि भी हैं, अत एव आपके विषय में संशयात्मा ही बने रहते हैं।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

अमरवर ! अवयववन्तः अपि लोकाः किम् अजन्मानः ? जगताम् भवविधिः किम् अधिष्ठातारम् अनादृत्य भवति ? अनीशः वा कुर्यात् भुवनजनने परिकरः कः ? यतः (एवम्, अतः) इमे मन्दाः त्वाम् प्रति संशेरते ॥६॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे देवाधिदेव! सावयव भी लोक क्या जन्मरहित हो सकते हैं? लोकों की उत्पत्ति क्रिया क्या अधिष्ठाता की अपेक्षा किये बिना हो सकती है? और यदि ईश्वर से भिन्न ही कोई जगत् की रचना करे तो जगत को उत्पन्न करने में सामग्री क्या होगी? इस कारण मूढ़ लोग ही आपके विषय में (ईश्वर है या नहीं आदि) संशय करते हैं ।।६।।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्रयी सांख्यम् योगः पशुपतिमतम् वैष्णवम् इति प्रभिन्ने प्रस्थाने इदम् परम् अदः पथ्यम् इति रुचीनाम् वैचित्र्याद् ऋजु-कुटिलनाना पथजुषाम् नृणाम् पयसाम् अर्णवः इव त्वम् एकः गम्यः असि ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

तीनों वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतशास्त्र (शैवमत), वैष्णवमत इत्यादिक सच्चिदानन्द सागर परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए साक्षात् परम्परया वा उपयुक्त भिन्न २ मार्गों वा मतमतान्तरों से यह हमारा मत परे दूर कुटिल क्लिष्ट होने पर भी साक्षात् मोक्ष देने वाला होने से श्रेष्ठ है, और वह (उनका दूसरों का पन्थ) पथ में- मार्ग में चलते समय ही हितकर एवं सरल होने पर भी परम्परया मोक्षदायक होने से श्रेष्ठ नहीं है, इस प्रकार रुचियों के भिन्न-भिन्न होने से अपनी अपनी रुचि के अनुसार टेढ़े सीधे अनेक मार्गों के अनुयायी मनुष्यों को उखड़बाखड़ नाना मार्गों से प्रवाहित होने वाले जलप्रवाह को समुद्र के समान आप ही एक मुख्यरूप से प्राप्त करने योग्य हैं । अर्थात् जैसे जल कहीं से भी चलकर एक समुद्र में ही पहुंचता है वैसे ही किसी भी

संप्रदाय से चलने वाले जिज्ञासु जन एक आप (शिवजी) को ही प्राप्त करते हैं, यदि वे चलते रहें ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्रयी साङ्ख्यम्, योगः पशुपतिमतम्, वैष्णवम्, इति, प्रभिन्ने प्रस्थाने, इदम् परम् अदः पथ्यम्, इति, च रुचीनाम्, वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषाम् पयसाम्, अर्णवः इव, त्वम्, एको गम्यः असि ।।७।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

तीन वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, शैवमत, वैष्णवमत इत्यादि विभिन्न मतमतान्तर हैं । इनमें यह श्रेष्ठ है, वह हितकर है । इस प्रकार लोगों का रुचि वैचित्र्य पाया जाता है । इस कारण सीधे-टेढ़े नाना मार्गों का अवलम्बन करने वाले लोगों के लिए आप ही एकं मात्र गन्तव्य स्थान हैं । जैसे कि सीधे-टेढ़े नाना मार्गों से बहने वाले जलों का समुद्र ही एक गम्य स्थान होता है ।।७।।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्मफणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रू प्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ।।८।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

वरद ! महोक्षः खट्वाङ्गम् परशुः अजिनम् भस्म फणिनः च कपालम् इति इयत् तव तन्त्रोपकरणम् सुराः ताम् ताम् ऋद्धिम्

भवद्भ्रू प्रणिहिताम् दधति तु हि स्वात्मारामम् विषयमृग-
तृष्णा न भ्रमयति ।।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में –

'वर' उत्तमोत्तम पदार्थों को, 'द' देकर सबको मालामाल बना डालने वाले हे शंकर ! आपके पास सवारी के लिए बूढ़ा बैल है जिसकी तीन टांगे नदारत हैं, (घर को सजाने योग्य फर्निचर में) खाट का एक अंग (पाया) मात्र है (ओजारों में धुनी की लकड़ी फाड़ने के लिए बिना धार और बेंटे का एक)फरसा या गँडासा है (ऐवं ढांकने के लिए एक जीर्णशीर्ण) व्याघ्र, मृग या गज चर्म का टुकड़ा है, शरीर में उबटन लगाने के लिए किसी भाग्यशाली भक्त के देह की खेह (राख) है (शरीर को सुशोभित रखने के लिए जेवरों में) थोड़े से फणधर सर्प और दो-चार टोकरे बिच्छु हैं, और भोजनादि के लिए पात्रों में किसी ब्रह्मवेत्ता के शिर की खोपड़ी है उपरोक्त इतनी ही आपके गृहव्यवहार को चलाने की सामग्री और संपत्ति है । इससे तो मालूम होता है कि हे आशुतोष शिवजी! आप वरद न होकर महादरिद्र ही हैं, किन्तु नहीं, ऐसा होना संभव नहीं हो सकता, क्यों? तो सुनिये सुकर्म में रत रहने वाले सुकृतिजन एवं इन्द्रादि देवता सबके सब उस उस अवर्णनीय और अलौकिक समृद्धि को आपके ही कृपाकटाक्ष से प्राप्त करके स्वतन्त्र रूप से उपभोग कर रहे हैं, (हे सदाशिव! आप ऐसे अनोखे दाता हैं) तो फिर अपने लिए थोड़ी सी भोगसामग्री रख क्यों नहीं छोड़ते? इस पर कहते हैं– जब कि अहर्निश अपने स्वरूपभूत आत्मा में ही रमण करने वाले जीव को भी भोग्य पदार्थों से प्राप्त होने वाले शब्द स्पर्श रूप रस गंधरूपी

विषयों की मृगतृष्णा भ्रम में भुलाकर अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती, तो फिर आत्मस्वरूप शिव को नहीं भ्रमा सकती इसमें तो कहना ही क्या?

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे——

वरद ! महः अक्षः भस्म-फणिनः अङ्गम् अजिनम् खट्वा परशु, कपालं च इति इयत् तव तन्त्रोपकरणम् सुराः तु भव-द्भ्रू प्रणिहिताम् ताम्-ताम् ऋद्धिम् दधति। स्वात्मा विषयमृग-तृष्णा रामं नहि भ्रमयति ।।८।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे अभीष्ट वस्तुओं का वरदान देने वाले! आपके पास तेजोमय चक्र है भस्म के समान शुभ्र तथा कोमलांग शेषनाग का अंग एवं चर्म आपकी शय्या है (अंग-पलंग हुआ और चर्म उस पर बिछी चादर हुई) आपके परशु (जिसे आपने परशुरामावतार के समय ग्रहण किया था) और पद्म तथा शंख हैं। इतनी ही आपकी निर्वाह सामग्री है । तो भी देवता आपकी ही भ्रुकुटी संचालन से सम्पादित अपनी अपनी समृद्धि को धारण करते हैं । यह सत्य है कि जिसकी आत्मा स्वयं आप हैं ऐसी विषय-मृगतृष्णा योगियों के रमणस्थान आपको भ्रमित नहीं करा सकती ।।८।।

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वा न खलु ननु धृष्टा मुखरता ।।९।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

पुरमथन कश्चित् इदम् सर्वम् ध्रुवम् गदति अपरः सकलम् अध्रुवम् तु परः ध्रौव्याध्रौव्ये जगति व्यस्तविषये एतस्मिन् समस्ते विस्मितःइव अपि तैःत्वाम् स्तुवन् न जिह्रेमि ननु मुखरता खलु धृष्टता।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे त्रिपुरारे! कोई एक सत्कार्यवादी सांख्यादिमतानुयायी यह स्थूलसूक्ष्मादि सब पदार्थसमुदाय नित्य यानि नाशरहित है। इस प्रकार स्पष्टस्वर से उद्घोष करता है, और कोई बौद्धादि मतानुसारी सारा-का-सारा ब्रह्माण्डान्तरवर्ती वस्तु समुदाय अनित्य यानि नाशवान्, असत् या शून्य बताता है, तथा अन्य कोई न्याय-वैशेषिकादि-मतावलम्बी तथा अन्य कोई अनित्यत्व का विषय विश्व के पदार्थों में विभक्त है, अर्थात् सावयव पदार्थ स्थूल रूप से अनित्य तथा परमाणू आदिक निरवयव सूक्ष्म पदार्थ नित्य हैं— ऐसा मानता है। इन सब मतवादों के कारण अचंभितसा होकर भी उन मतमतांतरों के द्वारा आपकी स्तुति करता हुआ मैं शर्मिन्दा नहीं हो रहा हूँ। सचमुच वाचालता ही ढीठ हुआ करतीं है अर्थात् मैं ठहरा बकवादी, सो आपकी स्तुति करने में आगे-पीछे का और उचित-अनुचित्त का भान न कर धीठ एवं निर्लज्ज की तरह जो कुछ मन में आता है, वकता ही चला जाता हूँ।

एक समय ब्रह्मा और विष्णु का 'हम दोनों में कौन बड़ा है' इस विषय पर झगड़ा हो गया। शिवजी ने उनके सामने

लिंगाकार ज्योतिःस्वरूप में प्रकट हो कर उन पर अनुग्रह किया, और उनके विवाद का निर्णय दिया इस कथा को दशवें श्लोक में संक्षेप से कहा जाता है ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

पुरमथन ! कश्चित् सर्वम् ध्रुवम् गदति, अपरः तु इदम् सकलम् अध्रुवम् गदति, परः एतस्मिन् समस्ते अपि जगति ध्रौव्याध्रौव्ये व्यस्तविषये गदति । (अहम्) विस्मितः इव तैः त्वाम् स्तुवन् न खलु जिह्रेमि । ननु मुखरता धृष्टा ।।९।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

क्षीरसागर अथवा गोकुलरूपी पुर में निवास करने वाले हे विष्णो! कोई इस जगत् को ध्रुव अर्थात् नित्य कहता है (यह सांख्य की ओर संकते है, जो उत्पत्ति से पूर्व भी कारण के अन्दर जगत् को सत् मानता हैं । विनाश के पश्चात् भी इसके मत में जगत् नष्ट नहीं होता, किन्तु इसका तिरोभावमात्र हो जाता है ।) दूसरा इस सकल जगत् को अध्रुव अर्थात् क्षणिक कहता है (यह बौद्ध की ओर संकेत है) तीसरा इस समस्त जगत् में नित्यता तथा अनित्यता को पृथक् पृथक् वस्तुओं में पृथक् २ बताता है (यह नैयायिक आदि की ओर संकेत है जो आकाश, काल, दिक् आत्मा आदि कुछ वस्तुओं को नित्य तथा कार्यद्रव्यों को अनित्य कहते हैं) । मैं विस्मित हुआ-सा उन्हीं सब वादों के द्वारा आपकी स्तुति करता हुआ-सा लज्जित नहीं होता । वाचालता सचमुच बड़ी धृष्ट होती है।।९।।

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) गिरिश ! अनलस्कन्धवपुषः तव यत् ऐश्वर्यम् परिच्छेत्तुम् विरिञ्चिः उपरि हरिः अधः यत्नात् यातौ अनलम् ततः भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम् ताभ्याम् तस्थे तव अनुवृत्तिः किम् न फलति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हिमगिरी की गोद में समाधिमग्न शंकर ! आग के खंबे समान ज्योतिर्मय आकृतिधारी आप (ईश्वर) का जो लिंगाकार स्वरूप है, उसका थाह पाने के लिए ब्रह्मा ऊपर के भाग में और भयहारीभगवान् विष्णु नीचे के हिस्से की तरफ पूर्ण प्रयत्नपूर्वक गये, (परन्तु देवताओं के हिसाब से हजारों वर्ष पर्यन्त दौड़ लगाते रहने पर भी जब) पार न पा सके, तब दुराग्रह छोड़कर भक्ति और श्रद्धा भार से नम्र होकर खूब स्तुति करते हुए वे दोनों आपके उस ज्योतिर्लिंग के समक्ष शरणागत भाव से चुपचाप खड़े हो गये । बाद आपने उन् दोनों के झगड़े का फैसला दिया, और उन्हें अपने शुद्ध-स्वरूप का साक्षात्कार कराया । हे भोले भंडारी ! आपका श्रद्धाभक्तिपूर्वक किया हुआ अनुवर्तनशरणागतादिरूप अनुसरण क्या-क्या फल नहीं देता? अपितु आपकी सेवाओं से इह लोक, परलोक और मोक्ष तक सभी मनोवांछित फल सहज ही मिल जाया करते हैं ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

गिरिश ! अनलस्कन्धवपुषः तव ऐश्वर्यम् परिच्छेत्तुम् यत्नात् विरिञ्चिः उपरि हरिः अधः यातौ यत् अनलम् ततः भक्ति-श्रद्धा-भर-गुरुगृणद्भ्याम् ताभ्याम् स्वयम् तस्थे किम् तव अनुवृत्तिः न फलति ॥१०॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

गोवर्धन पर्वत पर लीलाशयन करने वाले, अथवा समुद्र मंथन के समय मन्दराचल को पतला करने वाले हे विष्णु भगवान् ! तेजःपुंजरूप शरीर वाले आपके ऐश्वर्य को मापने के लिए यत्न पूर्वक ब्रह्मा जी उपर और शेषनाग नीचे गये, पर क्योंकि असफल हुए इस कारण भक्ति और श्रद्धा के अतिशय से बहुत अधिक स्तुति करते हुए वे स्वयं रुक गये । अर्थात् वे और ऊपर या नीचे नहीं गये । क्या आपकी सेवा फल नहीं लाती ।।१०।।

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्रिपुरहर ! यत् दशास्यः त्रिभुवनम् अयत्नाद् अवैरव्यतिकरम् आपाद्य रणकण्डूपरवशान् बाहून् अभृत इदम् शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों पुरों (शरीरों) को हर लेने वाले अथवा तीनों शरीरों में आसक्त जीवभावरूप त्रिपुरासुर का संहार करने वाले कृपालु शंकर ! जो कि दशमुख रावण भूर्भुवः स्वः तीनों लोकों को बिना ही विशेष परिश्रम के अर्थात् सहज ही में वैरभाव के लेश से भी रहित अर्थात् निष्कंटक बनाकर अर्थात् लड़ाई की ललकार का जबाब देने वाला और संग्राम में सामना करने वाला त्रिलोकी में भी कोई न मिलने के कारण युद्ध खेलने की खाज जिनमें बराबर लगी लगी रहती है, वैसी बीस-बीस भुजाओं को लिये स्वच्छन्द बिहार करता था, यह सब अपने मस्तकों को अपने ही हाथ से एक-एक करके काटकर हवन-कुण्ड में कई बार होमा है—ऐसी बलि (बलिदान कुर्बानी) है जिसमें अर्थात् आपके पादपद्ममों की पूजा के लिए अपने मस्तक रूप कमलों की मालायें बना कर सादर समर्पित किया है जिससे वैसी रावण द्वारा की गई स्थायी आपकी भक्ति के प्रताप का ही स्फुरण है ।।११।।

रावण ने शिव की कृपा से महत्ता पायी और प्रभुता के मद में अहशान भूलकर शिव से ही उलझ पड़ा तो उसे स्वर्ग या मृत्युलोक में तो क्या पाताल में भी स्थान न मिल सका । जिनसे बड़े बने उनहीं से ऐंठने का फल यही तो होना चाहिए और होता भी है । इस आशय का प्रतिपादन बारहवें श्लोक से किया जाता है—

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्रिपुरहर ! दशास्यः त्रिभुवनम् अयत्नात् अवैरव्यतिकरम्

आपाद्य बाहून् रणकण्डूपरवशान् यत् अभूत् (तत्) स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् (किञ्च) बलेः शिरः पद्मश्रेणीरचित-चरणाम्भोरुह ! इदम् (अपि) बलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् ॥११॥

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्तिरूपी तीनों पुरों को हर कर मोक्ष प्रदान करने वाले हे भगवान् विष्णु! रावण ने तीनों लोकों को बिना यत्न के ही वैररहित बनाकर अपनी भुजाओं को जो युद्ध की खुजलाहट से परवश किया, वह (जन्मजन्मान्तर में की हुई) आपकी स्थिर भक्ति का ही प्रभाव है। और बलि के सिर रूपीपद्मनिः श्रेणि का (पांव रखने का स्थान) पर अपने चरणकमल रखने वाले हे परमात्मन! यह भी अर्थात् बलि के यज्ञ में जाना, तीन पग भूमि की याचना करना, दो पग में समस्त जगत् को माप लेना, और अन्त में तृतीय चरण बलि के सिर पर रखना, यह सब भी बलि की की हुई सुदृढ़ आपकी भक्ति का ही परिणाम है ॥११॥

अमुष्यत्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि,
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्वदधिवसतौ कैलासे अपि त्वत्सेवासमधिगतसारम् भुजवनम् बलात् विक्रमयतः अमुष्य त्वयि अलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि

पाताले अपि प्रतिष्ठा अलभ्या आसीत् ध्रुवम् खलः उपचितः मुह्यति ।।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

आपके निवास स्थान कैलास पर्वत पर ही आपकी सेवा (कृपा) से ही प्राप्त हुई है शक्ति जिसमें वैसे भुजाओं के बन को अर्थात् बाहूबल को हठात् (घमन्ड से अजमाने वाले उस रावण की क्या दशा हुई? सुनिये । आपके पादांगुष्ठ का अग्र भाग यों ही हिल गया, और उससे कैलास जरा सा दवा, इतने ही में पाताल में भी ठहराव या टिकाव उसे नहीं मिला, और वह रावण नीचे से भी ठेठ नीचे लुडकता गया । अवश्यमेव दुष्ट, अधूरा तरक्की पाकर मोह में फंस जाता है और उन्नति के अभिमान में उपकार को भूल बैठता है ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

कैलासे ! त्वत् अधिवसतौ अपि बलात् त्वत्-सेवा-समधिगतसारम् भुजवनम् विक्रमयतः अमुष्य अलभ्या प्रतिष्ठा अलसचलित-अंगुष्ठ-शिरसि त्वयि पाताले अपि आसीत् । खलः उपचितः खलु मुह्यति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

केवल क्रीड़ा के निमित्त नन्दक नाम खड्ग को धारण करने वाले हे भगवन्! आपके ही निवासभूत त्रिभुवन का आपको ही दान करने के लिए बलात् हस्तोदक को जो कि आपके कर कमल के सम्बन्ध से सौभाग्य विशेष को प्राप्त

करने लगा था आपके हाथ में देते हुए उस राजा बलि की प्रतिष्ठा पाताल में भी फैल गयी, जब कि आपने तृतीय पग मापने के लिए लीलापूर्वक बलि के सिर पर अपना चरणांगुष्ठ रखा। ठीक है, दुर्जन अधिकार संपन्न होने पर निश्चित विवेक खो देता है ।।१२।।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याउन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ।।१३।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे वरद ! यत् परिजनविधेयत्रिभुवनः बाणः परमोच्चैः अपि सुत्राम्णः ऋद्धिम् अधः चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् न चित्रम् त्वयि शिरसः अवनतिः कस्यै उन्नत्यै न भवति।

भावार्थ श्रीशिवपक्ष में—

बिना मांगे ही अनधिकारी को भी दोनों हाथों से वरदान बांटते रहने वाले हे भोले बाबा! जो कि त्रिलोकी को आज्ञाकारी सेवक बना रखने वाले बहादुर बाणासुर ने सबसे बहुत बड़ी चढ़ी हुई भी त्रिलोकी के राजा इन्द्र की संपत्ति को भी नीचा कर दिया। वह नीचा दिखला देना आपके चरणों में सेवाभाव से रहने वाले उस बाणासुर के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आपके सामने शिर को नीचा करना कौनसी उच्च स्थिति के लिए नहीं हो सकता? अर्थात् सर्वप्रकार की उन्नति के लिए होता है ।।१३।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

वरद परम ! सुत्राम्णः परिजनविधेयत्रिभुवनः बाणः अधः सतीम् अपि ऋद्धिम् यत् उच्चैः चक्रे तत् त्वत् चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् न चित्रम् त्वयि शिरसः अवनतिः कस्यै उन्नत्यै न भवति ।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे समस्त अभीष्ट वस्तुओं को देने वाले लक्ष्मीपते! इन्द्र के त्रिभुवन को सेवक के समान वश करने वाले बाण ने (दैत्यों के साथ युद्ध में) नीचे गयी हुई भी राज्यादि संपत्ति को जो ऊंचा किया । वह आपके चरणों में प्रणाम करने वाले उस इन्द्र के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं, आपके प्रति सिर झुकाना भला किस उन्नति को देने वाला नहीं होता ।।१३।।

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा—
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
सकल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो—
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ।।१४।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे त्रिनयन ! अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्य विषम् संहृतवतः तव कण्ठे यः कल्माषः सः किम् श्रियम् न कुरुते अहो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः विकारः अपि श्लाघ्यः ।।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे त्रिनेत्र! अमृतमन्थनोत्पन्न विष से ब्रह्माण्ड भर के अकाल मृत्यु की नौबत आ गई और उसके भय से भयभीत

हुए देव और दानवों पर कृपावश होकर समुद्र से निकले हुए उस हलाहल कालकूट विष को संहार (आचमन करके हजम) कर डालने वाले आपके कण्ठ पर जो काला दाग लग गया है, वह क्या आपके गले की शोभा को नहीं बढ़ाता? यह बात नहीं किन्तु जरूर बढ़ाता रहा है उचित ही है कि ब्रह्माण्ड के भय का नाश करने में लगे हुए सज्जनों का विकार भी प्रशंसनीय समझा जाता है, निंदनीय नहीं, उसने नीलकण्ठ नाम से प्रशंसा ही की।

सान्वयपदच्छेदः--श्रीविष्णुपक्षे:--

त्रिनयन अकाण्ड-ब्रह्माण्ड-क्षय-चकित-देव-असुर-कृपाविधेयस्य, विषम् संहृतवतः तव सः कल्माषः कण्ठे श्रियम् न कुरुते भुवन-भय-भङ्ग-व्यसनिनः विकारः अपि श्लाघ्यः ।।१४।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में--

तीनों लोकों के नयनवत् सबको आभासित करने वाले हे भगवन्! असमय में ही ब्रह्माण्ड के भयभीत हुए, देव और असुर आदि के प्रति कृपापरवश हुए, (यज्ञबाराह रूप में अवतीर्ण हो पंकिल कर) सारे जल को सुखा देने वाले, आपका वह शरीर में लगा हुआ पंक (स्तोताओं से वर्णित किया हुआ)उनके कंठ में शोभा नहीं करता? ऐसी बात नहीं, अर्थात् शोभा करता ही है । ठीक हे जगत का भय दूर करना ही जिसका व्यसन है उसका विकार भी श्लाघ्य होता है ।।१४।।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।

स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्-
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे ईश ! यस्य विशिखाः सदेवासुरनरे जगति क्वचिद् अपि नित्यम् असिद्धार्थाः न एव निवर्तन्ते, सः एव स्मरः त्वाम् इतर सुरसाधारणम् पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत् हि वशिषु परिभवः पथ्यः न भवति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तु समर्थ सर्वेश्वर! जिस कामदेव के तीक्ष्ण बाण, देव, दानव और मानव से खिचोखींच भरे पड़े, जगतभर में कहीं से भी हमेशा अपना काम किये बिना लौटते ही नहीं, वही (देव, दानव, मानव आदि संसार के सभी प्राणियों पर अपने तीखे तीरों से सदा विजय पाने वाला) पुष्पधन्वा कामदेव आप (महादेव) को अन्यदेवताओं के समान सामान्य देव समझता हुआ अर्थात् मतलबी देवताओं के बहकाने से आप सर्वेश्वर या महेश्वर को भी एक मामूली देव समझकर आप पर भी अपने काम, या बाणों के द्वारा विजय पाने के लिए आपकी समाधि में विघ्न करता हुआ, आपके तृतीय (ज्ञान) नेत्र से निकले ज्ञानाग्नि से जलमरा । ठीक ही तो है, अपने शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण आदि को वश मे रखने वालों का अनादर हितकर नहीं होता ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

इतरसुर ईश ! जयिनः यस्य विशिखाः सदेवासुरनरे जगति

क्वचित् अपि नित्यम् असिद्धार्थाः नैव निवर्तन्ते स्मर्तव्यात्मा सः स्मरः त्वाम् पश्यन् साधारणम् अभूत् । परिभवः वशिषु न पथ्यः।।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

सर्वविलक्षण देवरूप हे भगवन्! जिस विजयशील (कामदेव) के बाण । देवता, असुर और मनुष्यों से युक्त जगत् में कहीं भी नित्य अपना कार्य सिद्ध किये बिना नहीं लौटते (शंकर के द्वारा दग्ध शरीर होकर) स्मृतिशेष हुआ भी वह कामदेव आपको देखकर आपके तुल्य हो आपके पुत्र प्रद्युम्नरूप में उत्पन्न हो गया । हां, इतनी बात अवश्य थी कि सबको परिभूत करने वाला वह काम जितेन्द्रियों में प्रिय न रहा ।।१५।।

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ।।१६।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे नटराज तव) पादाघाताद् मही सहसा संशयपदम् व्रजति, विष्णोः पदम् भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् द्यौः अनिभृतजटाताड़िततटा मुहुः दौस्थ्यम् याति, ननु त्वम् जगद्रक्षायै नटसि विभुता वामा एव ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे नटराज! —जब आप ताण्डव नृत्य करते हैं, तब

आपके उठाये हुए पैर को ताल के साथ पृथ्वी पर रखते समय लगने वाले आघात से पृथ्वी अचानक इतनी डामाडोल हो जाती है कि यहाँ गिरेगी कि वहाँ, उच्छलकर आकाश में उड जायगी, कि धसकर पाताल में बैठ जायगी? इत्यादि संदेह स्थिति को प्राप्त हो जाती है । मानो खेलाड़ी के पैर से ठुकराया गया गेंद विष्णु भगवान् के पद (ड़ग) आकाश में नाचते समय ऊपर उठाई हुई और इधर-उधर घूमायी जाती हुई भुजाओं के थपेड़ों से तारागण चोटें खाकर चटपटाते हैं अर्थात् भुजाओं के आघात से ऊपर आकाश में इधर-उधर उच्छलते हुए ग्रहों की भगदड़ मची है, और आकाश उपद्रव का अड्डा बन गया है । स्वर्ग भी खुली हुई जटा का झटका किसी एक कोने किनार में लग जाने से बारम्बार अपनी स्थिति (धुरी) से छटककर इतस्ततः ढुलक रहा है, यद्यपि आप दैत्यों को मोहकर उनके उपद्रवों से मही आदि जगत की रक्षा के लिए नृत्य करते हैं, तथापि वैभव (महत्त्व) विपरीत ही हुआ करता है, अर्थात् वैभवशालियों के खेल भी वैभवहीनों के दुःख का कारण बन जाते हैं ।।१६।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

आघातात् महीपात् सा सह संशयपदम् व्रजति, विष्णोः पदम् भ्राम्यत्-भुजपरिघ-रूग्णग्रह गणम् (भवति) द्यौः अनिभृत-जटा-आताडित-तटा दौस्थ्यम् याति, (तदा) त्वम् जगत्-रक्षायै नटसि । ननु वामा एव विभुता ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

आघात करने वाले दुष्ट राजाओं से जब पृथ्वी आघात के

साथ ही संशय में पड़ जाती है, जब यज्ञस्थान घूमते हुए राक्षसादि के भुजपरिघ से टूटे हुए सोमपात्रादि ग्रहगणों वाला हो जाता है, स्वर्गलोक का उच्चपद जब जटा आदि पाखण्ड वेष धारण करने वालों से आताड़ित होकर दुरवस्था को प्राप्त हो जाता है, तब आप जगत् की रक्षा के लिए नट के समान अवतार लेकर आते हैं। यद्यपि आप बिना अवतार लिये भी रक्षा करने में समर्थ हैं, तो भी आपकी लीला विलक्षण है।।१६।।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि—
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः।।१७।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः यः वाराम् प्रवाहः ते शिरसि पृषतलघुदृष्टः तेन जगद् जलधिवलयम् द्वीपाकारम् कृतम् अनेन तव वपुः दिव्यम् धृतमहिम इति उन्नेयम् ।।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

इस श्लोक में गंगावतरणमिष से पूर्वोक्त विभुता का वर्णन है। समस्त आकाश को व्यापने वाला, और प्रतिबिंबित तारागणों की झिलमिल झिलमिल होने वाली चमचमाहट से अनेक गुणी बढ़ादी है फैन और बुदबुदों की शोभा जिसकी वैसा जो जल का प्रवाह है, वह आपके शिर पै जरा से जल कण

के समान देखा गया, फिर जब भगीरथ राजा की प्रार्थना से आपने जटा झाड़ दी, और उस जलबिन्दु को नीचे छिड़क दिया तब उसी बून्द ने धोधमार प्रचण्ड प्रवाह बनकर जगत् (पृथ्वी) को समुद्ररूप गोलाकार वलयकरधनी से चारों ओर घेर कर, बेट समान बना दिया, इससे आपका शरीर (स्वरूप) अलौकिक, अत एव महिमा (विभुता) को धारणा करने वाला है, इस प्रकार अनुमान करना चाहिए। भाव यह है कि आपका वैभव आपके दिव्यादिक सभी कल्याणगुण अनन्त हैं ।।१७।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे——

तारागण-गुणित-फेना-उद्गम-रुचिः वियद्व्यापी शिरसि यः वाराम् प्रवाहः ते पृषत-लघु-दृष्टः तेन जलधि-वलयम् जगत् द्वीपाकारम् कृतम् इति-अनेन एव दिव्यम् धृतमहिम तव वपुः उन्नेयम् ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

तारागणों से बहुगुणित फेन वाली गंगा की उत्पत्ति से शोभापूर्ण आकाशव्यापी शिरःस्थानीय ब्रह्मलोक में स्थित जो जलप्रवाह आपने बिन्दु से भी छोटा देखा था, उसने समुद्ररूपी वलय बनाकर पृथ्वी को द्वीपाकार कर दिया । इससे ही (बलि को छलने के लिए) आकाश में आविर्भावित आपका महिमामय (त्रिविक्रमरूपधारी) शरीर कैसा रहा होगा? इसका अनुमान किया जा सकता है ।।१७।।

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।

दिधक्षोस्ते कोयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि–
विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

सान्वयपदच्छेदः–श्रीशिवपक्षे––

क्षोणी, रथः, शतधृतिः, यन्ता, अगेन्द्रः, धनुः, चन्द्राकौं, रथाङ्गे अथो रथचरणपाणिः शरः त्रिपुरतृणम् दिध क्षोः ते इति अयम् आडम्बरविधिः कः ? खलु विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः परतन्त्राः न ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में–

पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथी, सुमेरु (सुवर्ण) पर्वत को धनुष, चन्द्रसूर्य को रथ के पहिये और चक्रपाणि विष्णु भगवान् को बाण (बनाकर) त्रिपुरासुर रूपी तृण को जलाने की इच्छावाले आपको, इस प्रकार इतने भारी इस आडम्बर को रचने की क्या आवश्यकता थी? कुछ भी नहीं । जिसने विश्वविजयी कामदेव को भी संकल्पमात्र से जला डाला उसने शुष्कतृणरूप त्रिपुरासुर को जलाने की इच्छा से उतना बड़ा बखेड़ा खड़ा क्यों किया? यों ही मोज में आकर । असलियत तो यह है कि अपने हाथ के खिलौने से खेलती हुई प्रभावशालियों की बुद्धियां पराधीन नहीं हुआ करतीं, सर्वथा स्वतन्त्र होती हैं, उनके ऊपर "ऐसा क्यों किया और वैसा क्यों किया" इस प्रकार का नियोजन नहीं हो सकता ।।१८।।

सान्वयपदच्छेदः–श्रीविष्णुपक्षे––

क्षोणी, रथः शतधृतिः यन्ता अगेन्द्रः धनुः चन्द्राकौं रथाङ्गे अथो रथचरणपाणिः शरः इति । त्रिपुरतृणम् दिधक्षोः ते अयम्

आडम्बरविधिः कः ? खलु विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः न परतन्त्राः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

पृथ्वी के समान आपका रथ था, ब्रह्मा के समान सारथी था, पर्वतराज सुमेरु के समान धनुष था, चन्द्र और सूर्य के समान चक्र थे, चक्रपाणि के समान अर्थात् अपने तुल्य वीर्य वाला शर था। त्रिकुटशिखराश्रित लंकारूप तृण को जलाने के इच्छुक आपके लिए इस सब आडम्बर की क्या आवश्यकता थी? हां, यह निश्चित है कि, स्वाधीन वस्तुओं से क्रीड़ा करने वाली प्रभु इच्छाएँ पराधीन नहीं होती।।१८।।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ।।१९।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) त्रिपुरहर हरिः ते पदयोः साहस्रम् कमलबलिम् आधाय तस्मिन् एकोने यद् निजम् नेत्रकमलम् उदहरत् असौ भक्त्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिम् गतः, (च) त्रयाणाम् जगताम् रक्षायै जागर्ति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

शिवभक्ति की महिमा ऐसी अनौखी है कि भक्ति करता

है कोई एकाध ही, परन्तु फल मिलता है सारे संसार को। इसी रहस्य को भगवान् विष्णु के उदाहरण से समझाते हैं।

हे त्रिपुरारे! भगवान् विष्णु आपके चरणों में एक सहस्त्र (हजार) कमल पुष्पों की भेट को चढ़ाने का नियम लेकर पूजा करते रहते हैं (एक दिन) उन (कमलों) में से एक कमल कम हो जाने पर जो अपने नेत्रकमल को (उन्होंने अपने ही हाथ से)उखाड़ा और नियमित संख्या को पूर्ण करने के लिए आपके चरणों में चढ़ाया, वही भक्ति का आवेग सुदर्शन चक्ररूप से परिणाम को प्राप्त हो गया, अर्थात् सुदर्शन चक्र बन गया, और तीनों लोकों की रक्षा करने के लिए (आज भी) सावधान है। तात्पर्य यह है कि तीव्र भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी ने विष्णु जी को सुदर्शन दिया, जो सभी लोकों को रक्षा में सदा तत्पर रहता है। इस प्रकार भक्ति की, एक विष्णु ने और सुदर्शन द्वारा रक्षारूप फल मिला सबको ।।१९।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्रिपुरहर ! हरिः ते पदयोः साहस्रम् नेत्रकमलम् कमल-बलिम् आधाय यत् एकः अनेतस्मिन् निजम् उदहरत् असौ भक्तिउद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिम् गतः, त्रयाणाम् जगताम् रक्षायै जागर्ति।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्तिरूपी तीनों पुरों को हर कर मोक्ष प्राप्त करने वाले हे भगवन् ! इन्द्र ने आपके चरणों में अपने एक सहस्र नेत्रकमलरूपी कमलोपहार को अर्पित कर (अर्थात् सहस्र नेत्रों से आपके चरणों का दर्शन कर) अकेले ही स्वर्गलोक में अपने को ऊपर उठाया, वह भक्ति का उद्रेक ही ऐरावत, उच्चैः

श्रवा आदि इन्द्र के सैन्य चक्रके रूप में परिणत होकर तीनों लोकों की रक्षा के लिए जागृत हो रहा है ॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

क्रतुमताम् क्रतौ सुप्ते फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि कर्म प्रध्वस्तम् पुरुषाराधनम् ऋते क्व फलति ? अतः त्वाम् क्रतुषु फलदानप्रतिभुवम् सम्प्रेक्ष्य जनः श्रुतौ श्रद्धाम् बध्वा कर्मसु दृढपरिकरः ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

यज्ञयागादि कर्म करने वाले सुकृतिजनों के क्रियारूप यज्ञादि के समाप्त होते ही निवृत्त हो जाने पर भी फल देने के लिए आप जागते हुए सदा सावधान रहते हैं, अर्थात् क्रियारूप होने से यज्ञादि की समाप्ति के साथ ही निवृत्ति हो जाने के बाद भी यज्ञादिकों के स्वर्गादिक फल आपके द्वारा ही अधिकारी जनों को यथायोग्य अवसर पर बराबर मिलते रहते हैं। यदि कहा जाय कि यज्ञादि कर्मों से धर्म या पुण्यादिरूप अपूर्व (अदृष्ट) उत्पन्न होता है और उसी के अनुसार फल मिलता रहता है— इसमें शिवजी की क्या जरूरत है? तो ऐसा कहना उचित नहीं; क्योंकि यज्ञादि कर्म तो नष्ट या निवृत्त हो गया और उससे उत्पन्न हुआ अदृष्ट जड़ है, सो चेतन पुरुष (शिव) की आराधना के बिना कहीं फल दे सकता है? नहीं दे

सकता इस कारण आपको कर्मों के फल देनें के लिए ठेकेदार सोच समझकर ही, अधिकारी जन, वेद एवं वेदानुसारी शास्त्र में विश्वास को दृढ़ बनाकर कर्मों के करते रहने में दृढ़ता के साथ कमर कसे तत्पर रहता है ।

पूर्वोक्त श्रद्धासहित की अपेक्षा श्रद्धारहित या अश्रद्धा से किए गए यज्ञादि कर्मों का विपरीत फल '२१' वें श्लोक में बताया है ॥२०॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

क्रतौ सुप्ते क्रतुमताम् फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि पुरुषाराधनम् ऋते प्रध्वस्तम् कर्म क्व फलति ? अतः क्रतुषु त्वाम् फलदानप्रतिभुवम् सम्प्रेक्ष्य जनः श्रुतौ श्रद्धाम् बद्ध्वा कर्मसु दृढ़परिकरः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में –

यागादि कर्म के ध्वस्त होने पर भी यज्ञ करने वालों को स्वर्गादि फल प्राप्त कराने के निमित्त आप स्वयं जाग्रत रहते हैं । भगवान् की आराधना के बिना प्रध्वस्त कर्म भला कैसे फल दे सकता है? अतः यागादि कर्मों में आपको फल देने में उत्तरदायी समझकर लोक श्रुति में श्रद्धा रख कर्मों में प्रवृत्त होते हैं ।।२०।।

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे शरणद ! क्रियादक्षः तनुभृताम् अधीशः दक्षः क्रतुपतिः ऋषीणाम् आर्त्त्विज्यम् सुरगणाः सदस्याः क्रतुफलविधानव्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशः, ध्रुवम् कर्तुः श्रद्धाविधुरम् मखाः अभिचाराय हि (भवति) ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

जिनका कहीं शरण (ठिकाना) नहीं, जिन्हें शरण (आश्रय) देने के लिए कोई भी तैयार नहीं, उन भूत, प्रेत, सर्पादि अनधिकारी को भी अधिकारी से भी अधिक शरण देने वाले दयाभण्डार हे भोलेभंडारी! यज्ञादि क्रिया में निपुण, देहधारी प्रजा का पति, दक्षप्रजापति, (उस समय का राष्ट्रपति स्वयं) यज्ञ कराने वाला यजमान था, त्रिकालदर्शी भृगु आदि ऋषि लोग ऋत्विक् आदि की क्रिया करने वाले थे, और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवगण माननीय सदस्य या खास आमन्त्रित दर्शक थे । तथापि यज्ञादिकर्मफल देने के अठंग अभ्यासी आप ही के द्वारा दक्षयज्ञ का विनाश हुआ । क्यों ऐसा हुआ ? अवश्य ऐसा तो नहीं होना चाहिए था? हाँ, यज्ञकर्ता की श्रद्धा के बिना किये गये यज्ञ विपरीत फलदायक ही हुआ करते हैं मतलब कि दक्ष के पास यज्ञ की सफलता के सभी साधन विद्यमान थे, केवल एक शिवश्रद्धा का अभाव था। बस इतने ही से यज्ञ अपने साथ उसे (दक्ष को) भी ले मरा ।।२१।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

शरणद ! क्रियादक्ष-उदक्षः तनुभृताम् अधीशः क्रतुपतिः

ऋषीणाम् आर्त्विज्यम्, सुरगणाः सदस्याः, (तथापि) क्रतु-फल-विधान-व्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशः (जातः)। ध्रुवम् श्रद्धाविधुरम् मखाः कर्तुः अभिचाराय हि।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे शरणागत को शरण देने वाले भगवन्! क्रियादक्ष तथा उत्कृष्ट इन्द्रियों वाले स्वशरीरमात्र पोषी दैत्यों के या क्षीणों के पोषक दानियों के अधिपति राजा बलि यजमान थे, ऋषिगण ऋत्विज् थे, और देवों में गणनायोग्य महापुरुष सदस्य थे। फिर भी यज्ञ के फल देने में व्यसनी आप से ही यज्ञ का विध्वंस हुआ। निश्चित है कि श्रद्धा के बिना किये गये यज्ञ कर्ता यजमान के नाश का ही कारण होते हैं ।।२१।।

मर्यादालोपी कुमार्गगामी चाहे ब्रह्मा भी हो तो उसे भी उचित सजा शिवजी के शासन से मिलती है इस बात का वर्णन करते हैं—

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं—
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ।।२२।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे नाथ! अभिकम् प्रजानाथम् स्वाम् दुहितरम् प्रसभम् रिरमयिषुम् रोहिद्भूताम् ऋष्यस्य वपुषा गतम् ते अपि धनु-

ष्पाणेः मृगव्याधरभसः सपत्राकृतम् दिवम् यातम् त्रसन्तम् अमुम् अद्य अपि न त्यजति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

देव, दानव, मानव आदि सभी के नाक में नाथ पहनाकर मर्यादा में रखने वाले, और सन्मार्ग में चलानेवाले हे पशुपते! कामुक (कामदेव के आवेग में आविष्ट) ब्रह्मा जी ने अपनी सगी लड़की के साथ बलपूर्वक रति (रमण) करने की इच्छा की, लड़की संकोच और शर्म के मारे मृगी (हरिणी) बनकर भागने लगी तो ब्रह्मा जी भी मृग का रूप (शरीर) धारण कर पीछे दौड़े । उस निर्लज्ज ब्रह्मा को नसिहत देकर अपनी नफटाई का हौश कराने के लिए आपने भी हाथ में धनुष उठाया, और मृगरूपधारी ब्रह्मा को लक्ष्य करके शिकारी की सिफत से एक अमोघ बाण छोड़ा । डरी हुई मृगी मृगशिरा नक्षत्र होकर आकाश में कूद गई, ब्रह्मा भी व्याध का तारा बनकर आकाश में पहुंचे । आपका बाण भी शीघ्र ही आर्द्रा नक्षत्र बनकर ब्रह्मा जी के पीछे एकदम लगोलग जा धमका, और 'अब छिदा यह छिदा' इस तरह भयभीत उस ब्रह्मा को आज (अभी तक) भी नहीं छोड़ता बराबर पीछा कर रहा है । शिक्षा कैसी रही? जैसा अपराध (पाप) था वैसी ही ।।२२।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

नाथ ! प्रसभम् अभिकम् रिरमयिषुम्, स्वाम् दुहितरम् ऋष्यस्य वपुषा (रिरमयिषुम्) रोहिद्भूताम् गतम् प्रजानाथम् सपत्राकृतम् त्रसन्तम् दिवम् यातम् अपि अमुम् धनुष्पाणेः ते मृग-व्याध-रभसः अद्य अपि न त्यजति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे नाथ! प्रकृष्ट सभा वाले, तथा चारों ओर सिरों वाले रावण को (सीताहरण के द्वारा) जो रमण कराना चाहता था, और रावण की अपनी पुत्रीतुल्य सीता को मायामृग के शरीर से आनन्दित करना चाहता था, वह हरिण शावक बना हुआ प्रजापीड़क मारीच आपके बाण से विद्ध होकर आकाश में चला गया, (और वहां मृगशीर्ष नक्षत्रपुञ्ज के रूप में चमकने लगा)। फिर भी धनुष्पाणि आपका मृगवधोत्साह आज भी मानों उसे नहीं छोड़ रहा है, (क्योंकि आज भी आकाश में व्याध के तीर से वह विद्ध होता दिखाई देता है)।।२२।।

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणव-
त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे पुरमथन! पुष्पायुधम् स्वलावण्याशंसा धृतधनुषम् (हे) यमनिरत! पुरः तृणवत् अह्नाय प्लुष्टम् दृष्ट्वा अपि (हे) वरद! देहार्धघटनाद् यदि देवी त्वाम् स्त्रैणम् अवैति अद्धा बत युवतयः मुग्धाः।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे त्रिपुरदाहक! पुष्पधन्वा कामदेव तो सर्वसौन्दर्यजननी जगदम्बा पार्वती के सौन्दर्यरूप शस्त्र से मैं महादेव जी को

झट से जीत लूंगा इस आशा से धनुष उठाया था, परन्तु इंद्रिय संयम में नित्यनिरन्तर रत रहने वाले हे योगीश्वर! उसको अपने सामने तिनके की तरह तुरन्त भस्मीभूत हुए देखकर भी, हे वरदान दाता! पार्वती पर कृपा करके अर्धनारीश्वररूप से अपने देह के अर्ध (बाम) भाग में कायम घटा (बिठा) लेने से यदि पार्वती आपको स्त्रीवशवर्ती समझती है, भले समझे, क्योंकि महिलायें प्रायः भोलीभाली और समझहीन हुआ करती हैं । असल में आप स्त्रैण नहीं, जीतकाम ही हैं।।२३।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे——

हे वरद ! अर्धघटना-दच स्वलावण्याशम् धृतधनुषम् त्वाम् अह्नाय पुरः प्लुष्टम् युधम् अपि दृष्ट्वा पुरमथनपुष्पा यम-निरतदेहा सा देवी यदि स्त्रैणम् एति अद्धा युवतयः मुग्धाः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे अभीष्ट वस्तुओं के दाता! हे सीता के विप्रलम्भ को दावाग्नि के समान मिटाकर सम्भोग प्रदान करने वाले भगवन्! अपने शौर्यादि गुणकृत सौन्दर्य में ही आशा रखने वाले, धनुष धारण किए आपको शीघ्र ही लंकापुरी का दाह तथा युद्ध देख कर पुष्प से भी अधिक सुकुमार यम, नियम में रत देहवाली पतिव्रता वह देवी सीता यदि स्त्री के वश हुआ समझने लगती है, तो ठीक है, युवतियां मुग्ध ही होती हैं ।।२३।।

श्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं—
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे स्मरहर ! श्मशानेषु आक्रीडा पिशाचाः सहचराः चिताभस्म आलेपः अपि नृकरोटीपरिकरः स्रग्, एवम् तव अखिलम् शीलम् अमङ्गल्यम् नाम भवतु । तथापि (हे) वरद! स्मर्तॄणाम् परमम् मंगलम् असि ॥

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे कामान्तक! श्मशानों में आनन्द से खेलना, भूतप्रेतादि खेलने वाले साथी, चिता में जले हुए मुरदों की राख, पूरे शरीर में लगाने की पावडर, और मनुष्यों की खोपड़ियों से बनाई हुई गले की रूंडमाला (हार), इस प्रकार आपका सम्पूर्ण (सारा) अमंगल वस्तुओं के इस्तेमाल का स्वभाव अमंगल-जनक भले ही हो, तो भी, हे वांछित वरदान दाता! स्मरण करने वाले के वास्ते तो आप सबसे बढ़कर मंगलमयरूप ही हैं ।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) वरद ! श्मशानेषु आक्रीड़ा, स्मरहर-पिशाचाः सहचराः, चिताभस्म-आलेपः स्रक् अपि नृ-करोटी परिकरः तव अखिलम् नाम स्मर्तॄणाम् एवम् अमंगल्यम् शीलम् भवतु, तथापि परमम् मङ्गलम् असि ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे वरद! श्मशानतुल्य गृहों में क्षणिक क्रीड़ा करते हैं, शास्त्रीय विवेक को हरने वाले पिशाचतुल्य पुत्र-भार्या आदि साथी बनाये हुए हैं, चिताभस्मतुल्य लेप से शरीर को लिप्त करते हैं, मुर्दों की खोपड़ी तुल्य माला धारण करते हैं। आपका परमफल हेतुक नाम स्मरण करने वालों का उपर्युक्त अमंगलंशील भले ही हो, तथापि आप उनके लिए परम मंगल दाता हैं। (जैसे अजामिल आदि के लिए हुए थे)।।२४।।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

यमिनः सविधम् आत्तमरुतः अपि मनः प्रत्यक्चित्ते अवधाय यत् किम् तत्त्वम् अन्तः आलोक्य प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः इव अमृतमये ह्रदे निमज्य आल्हादम् दधति, तत् किल भवान् (एवास्ति)।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

यमनियमादि अष्टांग योगानुष्ठान में लगे हुए योगीलोग योगशास्त्रों में वर्णन की हुई विधि के अनुसार पूरक, कुंभक एवं रेचकरूप बाह्याभ्यन्तर प्राणायाम द्वारा प्राणवायु

(श्वासप्रश्वास) का निरोध करके, और मन को अन्तरात्मा में एकाग्र करके जिस कोई एक (अनिर्वचनीय एकरस निर्विशेष सच्चिदानन्द परब्रह्मरूप) तत्त्व का अपने अन्दर ही अवलोकन (अनुभव) करके रोमांचित हुए, और नेत्रों से आनन्दाश्रु के प्रवाह को उढेलते हुए, मानो अमृत के सरोवर में निमग्न होकर परमानन्द को प्राप्त होते हैं, वह निर्गुणनिराकार ब्रह्मतत्त्व भी आप ही तो हैं ।।२५।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

यस्मिनः सविधम् आत्तमरुतः प्रत्यक् मनः चित्ते अवधाय प्रहृष्यद्-रोमाणः प्रमद-सलिल-उत्सङ्गितदृशः यत् किमपि तत्त्वम् आलोक्य ये अमृतम ह्रदे निमज्य इव अन्तः आह्लादम् दधति तत् भवान् किल ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

शम-दम आदि साधन से सम्पन्न परमहंस लोग शास्त्रीय विधि से प्राणायाम कर प्रत्याहार द्वारा अन्तर्मुख किये मन को हृदयाम्बुज प्रदेश में ध्यान और समाधि द्वारा केन्द्रित कर रोमांचयुक्त एवं आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र वाले होकर जिस वाचामगोचर तत्त्व का दर्शन कर, मानों अमृतमय सरोवर में डुबकी लगाकर आन्तरिक आहलाद को (आनन्द को प्राप्त करते हैं, वह तत्त्व आप ही हैं ।।२५।।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ।।२६।'

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

त्वम् अर्कः असि, त्वम् सोमः, त्वम् पवनः, त्वम् हुतवहः, त्वम् आपः, त्वम् व्योम् त्वम् धरणिः, उ त्वम् आत्मा च, इति एवम् परिणताः त्वयि परिच्छिन्नाम् गिरम् बिभ्रतु, तु वयम् इह तत् तत्त्वम् न विद्मः, यत् त्वम् न भवसि ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

आप सूर्य हैं, आप चन्द्रमा हैं, आप वायु हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं, और आप ही आत्मा भी हैं, इस प्रकार आप की अष्टमूर्तियों का वर्णन शास्त्रों में पाया जाता है । इन आठ ही मूर्तियों के प्रतिपादन में दृढ़ आग्रह रखने वाले विद्वान् लोग आपके प्रतिपादन में परिच्छिन्न (संकुचित) वाणी को भले बोलते रहें, परन्तु हम तो यहाँ उस वस्तु को नहीं जानते, जो कि आप न हों । भाव यह है कि देश, काल, वस्तु सब कुछ आपका स्वरूप मात्र है; असीम अनन्त आपके स्वरूप में किसी प्रकार कीं परिच्छिन्नता सम्भव नहीं ।।२६।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

त्वम् अर्कः,त्वम् सोमः,त्वम् पवनः,त्वम् हुतवहः, त्वम् आपः, त्वम् व्योम, त्वम् उ धरणिः, त्वम् आत्मा असि, इति च एवम् परिणताः परिच्छिन्नाम् गिरम् बिभ्रतु, वयम् तु इह तत् तत्त्वम् न विद्मः यत् त्वम् न भवसि ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

आप आदित्य में स्थित पुरुष हैं, आप चन्द्रमा में स्थित पुरुष हैं, आप वायु में स्थित पुरुष हैं, आप अग्नि में स्थित पुरुष हैं, आप जल में स्थित पुरुष हैं, आप आकाश में स्थित पुरुष हैं, आप पृथ्वी में स्थित पुरुष हैं, आप विज्ञान आत्मा में स्थित पुरुष हैं, एवं विद्युत आदि में स्थित पुरुष हैं, इस प्रकार बुद्धि परिपाक वाले लोग भले ही परिच्छिन्न वाणी बोला करें, परन्तु हमें तो ऐसा कोई तत्त्व नहीं दिखाई देता जो आप न हों। (अर्थात् आप सभी कुछ हैं) ।।२६।।

त्रयीं तिस्रो वृत्तिस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ।।२७।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे शरणद (शिवजी) ! ओं इति पदम् अकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः व्यस्तम् त्रयीम् तिस्रः वृत्तीः त्रिभुवनम् त्रीन् सुरान् अथो अपि त्वाम् अभिदधत् (च) समस्तम् (ओं पदसमुदायवृत्या) तीर्णविकृति तुरीयम् ते धाम अणुभिः अवरुन्धानम् गृणाति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

शरणार्थीमात्र को बिना भेदभाव के शरण में लाने वाले हे महाशरण्य शिवजी ! ओं यह पद, शब्द या नाम अकारादि (आकार, उकार और मकार इन) तीन अक्षरों में विभक्त

हुआ, (पदार्थ रूप से) ऋक्, यजुः, व साम इन तीनों वेदों के रूप में, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अथवा उत्पत्ति, स्थिति और लय इन तीनों अवस्थाओं के रूप में स्वर्ग, मृत्यु, पाताल इन तीनों लोकों के रूप में, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवों के रूप में, और स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये तीन शरीर, विश्व तैजस, प्राज्ञ, ये तीन शरीराभिमानी विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर ये तीन समष्टि– अभिमानी, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव इत्यादि सर्व त्रिपुटियों के रूप में भी आपको ही अवयवशक्ति द्वारा वाच्यार्थरूप से कथन करता है, और अखण्ड अविभक्त हुआ वही ओं पदसमुदायवृत्ती से विकार रहित शुद्ध, सर्वत्रिपुटियों से पर, आपके स्वरूप को सूक्ष्म अर्धमात्रारूप ध्वनियों द्वारा लक्ष्य करता हुआ कथन करता है । अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, आदि जो कुछ है वह सब ओंकाराभिन्न शिव ही है ।।२७।।

सान्वयपदच्छेदः–श्रीविष्णुपक्षे—

हे शरणद ! त्रयीं तिस्रः वृत्तिः त्रिभुवनम् अथो त्रीन् सुरान् अपि अकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः अभिदधत्, ते तीर्णविकृति तुरीयम् धाम अणुभिः ध्वनिभिः अवरुन्धानम् व्यस्तम् समस्तं ओम् इति पदम् त्वाम् गृणाति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में–

शरणागतों को शरण देने वाले, हे भगवन्! तीन वेदों को, जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्ति रूप तीन वृत्तियों को, और ब्रह्मा-विष्णु-शिव इन तीन देवों को, अकार-उकार-मकार रूप तीन वर्णों से बतलाने वाला और आपके सर्व विकारातीत

चतुर्थ धाम को सूक्ष्म ध्वनियों से प्रतिपादन करने वाला व्यस्त समस्त ॐ यह पद आपका वर्णन करता है ।।२७।।

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) देव ! भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः उग्रः सहमहान् अथ तथा भीमेशानौ इति यद् इदम् अभिधानाष्टकम्, अमुष्मिन् प्रत्येकम् श्रुतिः अपि प्रविचरति प्रियाय अस्मै धाम्ने भवते प्रविहितनमस्यः अस्मि ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे दिव्यता के भण्डार! भव (जगत को पैदा करने वाला) शर्व (भक्तों को सुखी करने वाला), रुद्र (राक्षसों को रुलाने वाला, पशुपति (पशु अज्ञानी जीवों के पाशों को तोड़ने वाला), उग्र (अज्ञानादि दोषों को दग्ध करने वाला, तीक्ष्ण प्रचण्ड ज्ञानाग्निरूप) ईश्वरों के भी ईश्वर महेश्वर, अथवा देवों के भी देव महादेव, भीम (पापियों के लिए भयंकर), तथा ईशान, (अपराधियों के लिए समर्थ शासक), इस प्रकार (पावनों के भी पावन,) जो ये आपके आठ नाम हैं इनमें से प्रत्येक नाम की वेद, शास्त्र (अपि शब्द से ब्रह्मा, विष्णु-इन्द्र-शेषशारदादि देवगण् और नारदादि ऋषि लोग)

भी खूब विचार तथा पूर्ण श्रद्धा पूर्वक स्तुति करते रहते हैं । इस तरह वेदादि जिनके एक-एक नाम की स्तुति में संलग्न हैं, उन परमप्रिय इस परम तेजस्वी ज्योतिःस्वरूप आप भगवान् शंकर को मैं भी मनसावाचा-कर्मणा साष्टांग नमस्कार करता हूँ ।।२८।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) देव ! भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः उग्रः सह महान् तथा भीमेशानौ इति यत् अभिधानाष्टकम् अमुष्मिन् प्रत्येकम् श्रुतिः अपि प्रविचरति, अस्म प्रियाय धाम्ने भवते प्रविहित-नमस्यः अस्मि ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे देव! जगत् को उत्पन्न करनें वाला भव, जगत् का संहार करने वाला शर्व, जगत् को दण्डित कर रुलाने वाला रुद्र, सब जीवों का पालक पशुपति, दुष्टों के लिए प्रचण्ड उग्र, महिमाशाली (महान्) और भयकारी भीम, तथा सबका ईश (ईशान) ये जो आठ यौगिक नाम हैं, इनमें से प्रत्येक के लिए श्रुति भी प्रमाण है । उस प्रियधाम आपको मैं प्रणाम करता हूँ ।।२८।।

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमितिसर्वाय च नमः ।२९॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

हे प्रियदव ! नेदिष्ठाय ते नमः, च दविष्ठाय नमः, हे स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय नमः च महिष्ठाय नमः, हे त्रिनयन ! वर्षिष्ठाय नमः च यविष्ठाय नमः, (एवम्) सर्वस्मै नमः च तत् इदम् इति-सर्वाय नमः ।

हे एकान्तप्रिय! समीप से – भी-समीप अन्तरात्मस्वरूप आपको नमस्कार हो; और दुरात्सुदूर आपको नमन हो । हे कामान्तक! अणोरणीयान् आपको नमन हो, और महतो महीयान् आपको नमन, हे त्र्यम्बक! वृद्ध-से-भी वृद्ध कालातीत आपको नमन, और युवान-से भी युवान, सदा युवा आपको नमन, एवं सर्वरूप आपको नमन, और वह यह परोक्ष प्रत्यक्ष आदि सर्व अवस्थाओं से अतीत अनिर्वचनीय आपको नमन हो नमन हो, लाखों नमन हो ।।२९।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) प्रियदव ! नेदिष्ठाय ते नमः, दविष्ठाय च ते नमः; (हे) स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय ते नमः, महिष्ठाय च ते नमः, (हे) त्रिनयन ! वर्षिष्ठाय ते नमः, यविष्ठाय च ते नमः । सर्वस्मै ते नमः, तत्-इदम्-इति-सर्वाय च ते नमः

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

प्रिय वैषयिक सुखों को वैराग्योद्बोधन से नष्ट करने वाले हे भगवान्! अत्यन्त समीपवर्ती आपको नमस्कार हो, अतिदूरवर्ती आपको नमस्कार हो । हे वासनाओं को हरने वाले भगवन्! अत्यन्त छोटे आपको नमस्कार हो, अति महान्

आपको नमस्कार हो । हे तीनों लोकों के नयनवत् सर्वार्थावभासक भगवन्! अतिशयवृद्ध आपको नमस्कार हो, अतियुवा आपको नमस्कार हो । सर्वरूप आपको नमस्कार हो, परोक्ष-अपरोक्षरूप से अनिर्वाच्य सबके अधिष्ठानरूप आपको नमस्कार हो ।।२९।।

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

विश्वोत्पत्तौ बहलरजसे भवाय नमः नमः, जन सुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमः नमः तत् संहारे प्रबलतमसे हराय नमः, नमः प्रमहसिपदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमः नमः ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

विश्व की उत्पत्ति के लिए पूर्ण रजोगुणी बने हुए ब्रह्मारूप आपको बारम्बार वन्दना हो, तमामजीवों को (अनन्त जीवोंको) सुखी करने के लिए सत्त्वगुण को बढ़ा लेने पर विश्वपालक विष्णुस्वरूपधारी मृड (आप) को अनन्तवार नमस्कार । प्रलय का समय आने पर विश्व का संहार करने के लिये प्रबल तमोगुणी प्रचण्डमूर्ति रुद्ररूपधारी आपको भूयोभूयो नमस्कार, अविद्या के लेश से भी शून्य पूर्ण प्रकाशरूप मोक्षपद की प्राप्ति के लिए त्रिगुणातीत प्रपञ्चोपशम शिवस्वरूप आपको लाखों प्रणाम ।

हे शिवजी! विश्व की उत्पत्ति, स्थिति एवं व्यवस्था (लय) इन अवस्थाओं के कारण रजोगुणी भव (ब्रह्मा), सत्त्वगुणी मृड़ (विष्णु), और तमोगुणी हर (रुद्र), ये सब नामरूप आप ही के होते हैं ।

वस्तुतः आपका स्वरूप इन सबसे रहित निस्त्रैगुण्य ही है ।।३०।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

विश्वोत्पत्तौ बहलरजसे भवाय नमः नमः, तत्संहारे प्रबलतमसे हराय नमः नमः, जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमः, नमः, निस्त्रैगुण्ये प्रमहसि पदे शिवाय नमः नमः ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

विश्व की उत्पत्ति के निमित्त प्रचुर रजोगुण वाले ब्रह्ममूर्ति आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो । विश्व के संहार के निमित्त प्रबल तमोगुणवाले रुदमूर्ति आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो । सकल जनों के सुख के निमित्त सत्त्वगुण का उद्रेक होने पर विष्णुमूर्ति आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो । त्रिगुणातीत अवस्था में माया से अनभिभूतज्ञानज्योतिमयपद में स्थित परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो ।।३०।।

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-

द्वरद ! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) वरद ! क्लेशवश्यम् कृशपरिणति इदम् (मम) चेतः क्व ? च, च क्व गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वत् तव ऋद्धिः इति चकितम् भक्तिः माम् अमन्दीकृत्य ते चरणयोः वाक्यपुष्पोपहारम् आधात् ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे वरदायक! पञ्चक्लेशाधीन सामर्थ्यहीन पंगु यह मेरा चित्त कहाँ किस योग्य है? किसी योग्य नहीं, निरा अयोग्य है, और कहाँ तो तीनों गुणों की सीमा (पहुंच) से बाहर, भूतभविष्यवर्तमान इन तीनों कालों से पर, आपकी अनन्त असीम महिमा इस अपनी अयोग्यता के भान से आपके सम्बन्ध में एक शब्द भी कहने के लिए मैं भयभीत ही था, परन्तु आपके चरणों की भक्ति ने ही मुझे उत्साह देकर योग्य बनाया, और मेरे द्वारा आपके चरणों में महिम्नःस्तोत्र के वाक्य (श्लोक) रूप पुष्पों की भेंट चढ़वायी) यह स्तोत्र आपकी भक्ति का ही प्रताप है ।।३१।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) वरद ! क्व च कृशपरिणति क्लेशवश्यम् इदम् (मम) चेतः क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वत् ऋद्धिः । इति चकितम् माम् अमन्दीकृत्य भक्तिः ते चरणयोः वाक्यपुष्पोपहारम् आधात् ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे वरदायक भगवन् ! कहाँ तो अपरिपक्व, अविद्याअस्मिता आदि क्लेशों के वशीभूत यह मेरा चित्त है, और कहाँ आपकी गुणों की सीमा का उलंघन करने वाली अनन्त विभूतियाँ हैं। इस प्रकार भीत हुए मुझे भीतिरहित एवं निरलस बना कर भक्ति ने आपके चरणों में 'महिम्नःस्तोत्र-वाक्य रूपी पुष्पों की भेंट चढ़वायी ।।३१।।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।३२।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

(हे) ईश ! सिन्धुपात्रे स्यात् असितगिरिसमम् कज्जलम्, सुरतरुवरशाखा लेखनी (स्यात्) (च) ऊर्वी पत्रम्, यदि (उक्त-वस्तूनि) गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् लिखति तत् अपि तव गुणानाम् पारम् न याति ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

हे महेश! आपके दिव्य एवं कल्याण गुणों को लेखबद्ध करने के लिए समुद्र तो दावात बने, काला पहाड़ स्याही बने, मोटे मोटे कल्पवृक्ष की शाखायें कलम बनें, और पृथ्वी पत्र (कागज) बने, उन सब असम्भवित वस्तुओं को सम्भवित

बनाकर स्वयं सरस्वती देवी खाना, पीना, सोना, मरना आदि सब कुछ छोड़कर सारा समय अजर अमर होकर लिखती रहें, तो भी आपके खास खास गुणों के भी पार को नहीं पा सकतीं। दूसरों की तो गुंजाइश ही क्या है? ।।३२।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

(हे) ईश ! यदि सिन्धुपात्रे असित-गिरि-समम् कज्जलम् स्यात्, सुर-तरु-वर-शाखा लेखनी स्यात्, उर्वीपत्रम् स्यात्, (एतानि) गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् लिखति, तदपि तव गुणानाम् पारम् न याति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

हे ईश! यदि समुद्ररूपी दवात हो, उसमें नीलपर्वत के बराबर स्याही हो, कल्पवृक्ष की शाखा लेखनी हो, पृथ्वी कागज हो, और उसे लेकर सरस्वती अनन्तकाल तक लिखती रहे, तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती ।।३२।।

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ग्रथितगुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य एतत् रुचिरम् स्तोत्रम् सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः अलघुवृत्तैः चकार ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

असुरेन्द्र सुरेन्द्र तथा मुनीन्द्रों द्वारा पूजित चन्द्रमौलीशवर गुणों की महिमा से युक्त, वास्तव में तो निर्गुण महादेव जी के इस मनोहारी 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' नाम के स्तोत्र को सर्वगन्धर्व गणों में श्रेष्ठ 'पुष्पदन्त' नामक गन्धर्वराज ने बड़े (शिखरिणी आदि) छन्दों में बनाया । सम्भवतः 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' यहाँ समाप्त हो गया । आगे के श्लोक महात्म्य के ज्ञात होते हैं ।।३२।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

असुर-सुर-मुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ईश्वरस्य ग्रथितगुण-महिम्नः निर्गुणस्य अलघुवृत्तैः रुचिरम् एतत् स्तोत्रम् सकलगुण-वरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः चकार ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

असुर, देवता एवं मुनिन्द्रों से पूजित, चन्द्रमौलि शिव के भी ईश्वर, अनन्त गुणों की महिमा से पूर्ण होते हुए भी, निर्गुण विष्णु भगवान् के इस स्तोत्र को, (जो कि महान चरित्रों से युक्त है) सकल गुणों से वरिष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्वराज ने रचा है ।।३३।।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत—
त्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ।।३४।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीशिवपक्षे—

यः पुमान्: शुद्धचित्तः परमभक्त्या धूर्जटेः अनवद्यम् एतत् स्तोत्रम् अहः अहः पठति, सः अत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्, च कीर्तिमान् भवति, तथा (देहत्यागानन्तरम्) रुद्रतुल्यः (भूत्वा) शिवलोके (महिमाम् प्राप्स्यति) ।

भावार्थ श्री शिवपक्ष में—

जो मनुष्य चित्त को पवित्र रखके परमभक्तिपूर्वक शिवजी के परमपावन इस स्तोत्र का रोज पाठ करेगा । वह यहाँ इस लोक में अति अधिक धन-धान्य एवं आयु को पाकर पुत्रादि कुटुम्ब वाला, और इज्जत वाला होगा, तथा (देहत्यागानन्तरम्) शिवसदृश होकर शिव लोक में महिमा को प्राप्त होगा ।।३४।।

सान्वयपदच्छेदः—श्रीविष्णुपक्षे—

इदम् अनवद्यम् स्तोत्रम् धूर्जटेः परमभक्त्या शुद्धचित्तः यः पुमान् अहः अहः पठति, सः शिवलोके रुद्रतुल्यः भवति तथा अत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमान् च भवति ।

भावार्थ श्री विष्णुपक्ष में—

विष्णु के इस निर्दोष स्तोत्र को शिव की भी परम भक्ति से जो शुद्धचित्त मनुष्य प्रतिदिन पढ़ता है, शिवलोक में (मंगलमय विष्णु लोक) वह रुद्र के समान हो जाता है, और यहाँ प्रचुर धन वाला, दीर्घायु, पुत्रवान् एवं कीर्तिमान् होता है ।।३४।।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानंयागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५॥

सान्वयपदच्छेदः—उभयपक्षे—

दीक्षा दानम् तपः तीर्थम् ज्ञानंयागादिकाः क्रियाः (हे शंकर ! वा हे विष्णो ! ते) महिम्नस्तवपाठस्य षोडशीम् कलाम् न अर्हन्ति ।

भावार्थ दोनो पक्षों में—

दीक्षा लेना, दान देना, तप करना, तीर्थसेवन, और शास्त्र ज्ञान याग आदि सकल क्रियायें हे शंकर ! अथवा (हे विष्णु!) आपके महिम्नस्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला के भी योग्य नहीं हो सकतीं ।।३५।।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३६॥

सान्वयपदच्छेदः—

पुण्यम् गन्धर्वभाषितम् मनोहारि शिवम् ईश्वरवर्णनम् इदम् स्तोत्रम् आसमाप्तम् (अभूत्) ।

भावार्थ—

पवित्र श्रीपुष्पदन्तप्रणीत अनुपम, मनोहर, मंगलमय हरिहर वर्णन से परिपूर्ण यह स्तोत्र '३४' श्लोक तक समाप्त हो गया। अथवा समाप्ति तक पुण्यम्, अनौपम्यम्, मनोहारि शिवम् और ईश्वरवर्णनम् है ।।३६।।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

सान्वयपदच्छेदः—

महेशात् अपरः देवः न अस्ति, महिम्नः अपरा स्तुति न, अघोरात् अपरः मन्त्रः न, (च) गुरोः परम् तत्त्वम् न (अस्ति) ।

भावार्थ—

महेश्वर से बढ़कर और कोई देव नहीं है, महिम्नस्तोत्र से बढ़कर अन्य कोई स्तोत्र नहीं है, अघोर (प्रणव) मन्त्र से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, और गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है ॥३७॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा—
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

सान्वयपदच्छेदः—

शिशुशशधरमौलेः देवदेवस्य दासः कुसुमदशननामा गन्धर्व-राजः सः अस्य रोषात् निजमहिम्नःभ्रष्टः (तु) दिव्य-दिव्यम् इदम् महिम्नः स्तवनम् अकार्षीत् एव खलु ।

भावार्थ—

जटामुकुट में बाल (द्वितीया) चन्द्र को धारण करने वाले देवाधिदेव महादेव जी का भक्त पुष्पदन्त नामक एक था

गन्धर्वों का राजा। वह शिवजी के कोप से अपनी महिमा (अदृश्य रहने की शक्ति, तिरोधान विद्या अर्थात् नजरबन्दी) से च्युत हो गया, परन्तु उसने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए दिव्यातिदिव्य इस शिवमहिमा के स्तोत्र को बनाया, और भूतभावन भगवान् शंकर की कृपा से अपनी विद्याशक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया, ऐसा सुना जाता है ।।३८।।

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ।।३९।।

सान्वयपदच्छेदः—

सुरवरमुनिपूज्यम् स्वर्गमोक्षैकहेतुम् अमोघम् पुष्पदन्त-प्रणीतम् इदम् स्तवनम् मनुष्यः प्राञ्जलिः अन्यचेताः न यदि पठति (तु परिपूर्णप्रारब्धभोगेषु) किन्नरैः स्तूयमानः शिव-समीपम् व्रजति ।

भावार्थ—

बड़े-बड़े देव और मुनि लोग जिसमें पूज्यभाव (श्रद्धा) रखते हैं, स्वर्ग और मोक्ष का मुख्य कारण कभी निष्फल नहीं जाने वाला पुष्पदन्त रचित इस स्तोत्र का कोई भी मनुष्य हाथ जोड़कर शिव से अन्य में चित्त न रखकर यदि पाठ करेगा, तो प्रारब्धभोग पूरे होने पर किन्नरों द्वारा मार्ग में सत्कार को पाता हुआ शिवजी के पास पहुंच जाता है। केवल पाठ करने से ही

शिवसामीप्य की प्राप्ति होती है, तो फिर समझ बूझकर पाठ करने पर तो शिवसारूप्य भी मिल ही जायगा ।।३९।।

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ।।४०।।

सान्वयपदच्छेदः—

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन किल्बिषहरेण हरप्रियेण समाहितेन स्तोत्रेण कण्ठस्थितेन पठितेन भूतपतिः महेशः सुप्रीणितः भवति ।

भावार्थ—

श्री पुष्पदन्त के मुखकमल से निकले हुए कायिक वाचिक मानसिक आदि सब प्रकार के पापों को हर लेने वाले भगवान् शंकर को सबसे अधिक प्रिय लगने वाले, और समान भाव से सबका हित करने वाले, इस स्तोत्र को कण्ठस्थ करके हर-हमेंश पाठ करते रहने से पञ्चभूतों के या जड़चेतन समुदायरूप विश्व के पति-नाथ शंकर भगवान् खूब खुश हो जाते हैं, और पाठ करनेवाले भक्त को ज्ञान देकर कृतार्थ कर देते हैं ।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ।।४१।।

"सत्प्रेमसाधनाट्रस्ट" (पंजीकृत संख्या A 2593 बम्बई) का संक्षिप्त परिचय एवं उसकी शुभ प्रवृत्तियां :–

बम्बई में ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर श्री स्वामी प्रेमपुरी जी महाराज के ८ दिसम्बर १९५८ को निर्वाण के अनन्तर "स्वामी प्रेमपुरी आश्रम ट्रस्ट" की स्थापना हुई किन्तु उस ट्रस्ट के द्वारा भवन निर्माण आदि कार्य में अधिक विलम्ब होता हुआ देखकर त्यागमूर्ति महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गणेशानन्द पुरी जी महाराज ने ब्रह्मलीन स्वामी जी के शिष्यों एवं सत्संगियों के सहयोग से "स्वामी प्रेमपुरी जी सत्संग मण्डल" की स्थापना ६ जुलाई १९६० ई. में किया। उन्हीं दिनों में श्री त्यागमूर्ति जी ने हरद्वार गंगा तट पर निवास की इच्छा से सूरतगिरि बंगला, गिरीशानन्द आश्रम-कनखल में कुटिया का निर्माण कराया। तदनन्तर हरद्वार कुम्भ अप्रैल सन् १९६२ के पश्चात् ईश्वर की प्रेरणा से श्री त्यागमूर्ति जी के मन में यह शुभ संकल्प हुआ कि पवित्र गंगा तट पर सन्तों एवं साधकों के निवास योग्य एक आश्रम की स्थापना होनी चाहिये जहां रहकर सन्त-साधक श्रवण, मनन, स्वाध्याय एवं भजन कर सकें एवं परम शान्ति का अनुभव करें। इस शुभ सकल्प के फलस्वरूप दिसम्बर १९६२ ई. में ही **"साधनासदन हरद्वार"** नाम से ट्रस्ट कायम करके बम्बई में ही रजिस्टर्ड करा दिया गया। ट्रस्ट द्वारा हरद्वार में 'साधनासदन' नाम से आश्रम निर्माण के बाद श्री त्यागमूर्ति जी कुछ समय बम्बई एवं कुछ समय हरद्वार निवास करते रहे। जुलाई १९७१ में जब श्री त्यागमूर्ति जी ने

हरद्वार निवास का संकल्प किया अर्थात् १२ वर्ष के लिये हरद्वारक्षेत्रसंन्यास का व्रत लिया, तब कुछ सहयोगियों की प्रेरणा से "स्वामी प्रेमपुरी जी सत्संग मण्डल ट्रस्ट" एवं "साधनासदन हरद्वार ट्रस्ट" इन दोनों, ट्रस्टों के एकीकरण का निश्चय हुआ। एकीकृत ट्रस्ट का **"सत्प्रेमसाधनाट्रस्ट"** यह नामकरण करते हुए श्री त्यागमूर्ति जी ने कहा कि इस नाम में 'सत्संग मण्डल' का 'प्रेम' शब्द एवं 'साधनासदन हरद्वार' का 'साधना' शब्द आ जाता है अर्थात् दोनों ट्रस्टों के नाम में जो 'सत्' 'प्रेम' और 'साधना' ये तीन मुख्य शब्द हैं वे इस एकीकृत नाम में आ जाते हैं, साथ ही इस एकीकृत नाम का अर्थ भी प्रेरणादायक है क्योंकि इस नाम से यह अर्थ अभिव्यक्त होता है कि सत्यस्वरूप परमात्मा का सत्य प्रेम ही मनुष्य के कल्याण का मुख्य साधन है। अतः एकीकृत ट्रस्ट का नाम **"सत्प्रेमसाधनाट्रस्ट"** हुआ।

'सत्प्रेमसाधनाट्रस्ट' के ट्रस्टियों के नाम निम्नलिखित हैं—

१. त्यागमूर्ति महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गणेशानन्दपुरी जी महाराज, अध्यक्ष एवं मैनेजिंग ट्रस्टी, हरद्वार, बम्बई।
२. श्री स्वामी परमेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज, मन्त्री, हरद्वार।
३. महामण्डलेश्वर श्री स्वामी जगदीशपुरीजी महाराज, उपमन्त्री, हरद्वार।
४. श्री ब्र. अम्बिकानन्द जी महाराज, कोषाध्यक्ष, हरद्वार

'सत्प्रेमसाधनाट्रस्ट' की शुभ प्रवृत्तियां

साधनासदन :–

कनखल-हरद्वार में पवित्र गंगा तट पर एकान्त शान्त स्थान में सन्तों एवं साधकों के निवास योग्य छोटे-बड़े ४२ कमरों का सुव्यवस्थित आश्रम है ।

साधनासदन के मन्दिर-मण्डप में अंकित साधनासदन के उद्देश्य एवं स्थानीय नियम :–

उद्देश्य :–

मानव-जीवन की सफलता के लिये यम, नियम आदि योग, सगुणोपासना एवं शमदमादि ज्ञान के साधनों द्वारा अद्वैत-आत्मदर्शन ही सदन का उद्देश्य है ।

स्थानीय नियम :–

१– सदाचारी, उत्साही, परोपकारी, अद्वैत-आत्म-परायण सदन के अंगस्वरूप साधक एवं निष्ठावान् तत्त्वदर्शी

दशनाम परमंहस सन्यासी तथा उनके ब्रह्मचारी ही व्यवस्थापक की अनुमति से सदन के नियमों का पालन करते हुए पारस्परिक सद्भावपूर्वक निवास कर सकेंगे ।

२– सदन की विशेष सेवा में संलग्न व्यक्ति को छोड़कर साधनासदन में निवास करने वाले सभी सन्तों एवं साधकों को गंगास्नानादि करके अर्चावतार भगवद्विग्रहों का दर्शन, पूजन प्रातः सायं की आरती, महिम्नस्तोत्रपाठ, विष्णु-सहस्त्रनामपाठ एवं स्वाध्यायसत्संग में नियम पूर्वक भाग लेना आवश्यक है ।

३– बहिर्मुखी निषिद्ध आहार-विहार करने वाले एवं याचक यहां नहीं रहेंगे ।

४– सदन निवासी आत्मीय भाव से सदन की स्वाध्याय आदि प्रवृत्ति में सोत्साह भाग लेते हुए भजन ध्यानादि में संलग्न रहें । शुल्क लेकर औषधि वितरण, शिष्य बनाना आदि की भी स्वतन्त्र प्रवृत्ति न करें ।

५– प्रत्येक व्यक्ति सदन की स्वच्छता एवं पवित्रता का पूर्ण ध्यान रखें ।

६– साधुवेष में भी महिला व अल्पवयस्क का सर्वथा निवास न होगा ।

७– सदन के संचालक व निवासी उक्त सन्त महात्मा ही होंगे ।

सन्तों एवं साधकों का निवास :–

साधनासदन आश्रम में एकान्त एवं शान्तिप्रिय भजनानन्दी, स्वाध्यायशील, श्रवण-मनन आदि साधन में संलग्न सन्त महात्मा निवास करते हैं ।

मन्दिर :–

साधनासदन आश्रम में भगवान् कृष्ण का 'राधेश्याम मन्दिर' भगवान् राम का 'श्री सीताराम मन्दिर' एवं भगवान् शंकर का 'श्री लोकेश्वर मन्दिर' ये तीन विशाल मन्दिर हैं । उक्त मन्दिरों में प्रातः एवं सायं पूजन, आरती, पुष्पाञ्जलि के अनन्तर सायंकाल महिम्नपाठ तथा प्रातःकाल दश शान्तिपाठ एवं विष्णुसहस्त्रनामपाठ प्रतिदिन नियमित रूप से होता है । इसके अतिरिक्त गोपेश्वर गौशाला में भगवान् शंकर का एक भव्य गोपेश्वर मन्दिर है । वहां पर भी यथासाध्य आरती पूजन आदि होता है ।

पुस्तकालय :–

'साधनासदन' आश्रम में वेदान्त आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय प्रेमी सन्तों एवं साधकों के लिये विशेष उपयोगी विशाल पुस्तकालय है ।

सत्संग मण्डप :–

'साधनासदन' आश्रम में 'सत्संग मण्डप' नाम का एक हाल भी है जिसमें प्रतिदिन स्वाध्याय एवं सत्संग आदि होता है ।

अद्वैत मण्डप :–

'साधनासदन' आश्रम के दूसरी मंजिल पर 'अद्वैत मण्डप' नाम का एक हाल है जिसका अन्य सदुपयोगों के अतिरिक्त मुख्य रूप से आचार्यशंकर की जयन्ती मनाने में सदुपयोग होता है ।

यज्ञमण्डप :–

साधनासदन में एक 'यज्ञ मण्डप' नाम का भी हाल है । इसमें हवनकुण्ड है जिसमें समय-समय पर हवन यज्ञ होता है

गोसदन गौशाला :–

'साधनासदन' आश्रम के समीप ही गोसदन नाम से आश्रम की गौशाला है । जिसमें गौओं की सेवा होती है एवं गौओं के दूध का उपयोग मन्दिरों में पूजन, भोग एवं सन्तों तथा विद्यार्थियों आदि आश्रम वासियों के निमित्त होता है ।

गोपेश्वर गौशाला :–

'साधनासदन' आश्रम से करीब १४ किलो मीटर दूर लक्सर रोड़ पर गोपेश्वर भगवान् के सान्निध्य में गोसदन से बड़ी गौशाला है । वहां पर भी यथासाध्य गोसदन की तरह ही गोसेवा एवं दूध का सदुपयोग होता है ।

दैनिक कार्यक्रम :–

'साधनासदन' आश्रम में सायं-प्रातः मन्दिरों में पूजन से

अतिरिक्त प्रतिदिन सायं-प्रातः प्रस्थानत्रयी अर्थात् शंकर भाष्यानुसारी उपनिषद् गीता एवं ब्रह्मसूत्र का स्वाध्याय होता है जिससे सन्त-महात्मा एवं जिज्ञासु भक्त लाभान्वित होते हैं ।

विशेष कार्यक्रम :-

विशेष कार्यक्रम ज्ञान यज्ञादि जो वार्षिक शुभ प्रवृत्तियों के रूप में प्रकाशित किये गये हैं वे होते हैं । उनके अतिरिक्त समय समय पर विशेष अनुष्ठान एवं भागवत सप्ताह आदि विशेष कार्यक्रमों का आयोजन भी हो जाता है ।

स्वामी प्रेमपुरी जी सत्संग मण्डल :-

बम्बई में मलबार हिल पर 'स्वामी' प्रेमपुरी जी सत्संग मण्डल' के नाम से एक फ्लेट है जहां सन्त महात्मा निवास करते हैं एवं मण्डल की ओर से ३-४ स्थानों पर उन्हीं "सन्तों द्वारा सत्संगियों को स्वाध्याय सत्संग का लाभ प्राप्त होता है ।

साधनासदन तिथि-फण्ड :-

ट्रस्ट के निर्णयानुसार सन्तसेवा, गौसेवा, मन्दिरों की सेवा एवं आश्रम को व्यवस्थित रखने के लिये "साधनासदन तिथि-फण्ड" की स्थापना की गयी है । उसके अनुसार जो कोई भी व्यक्ति 'साधनासदन तिथि फण्ड' में एक हजार एक (१००१) रुपया जमा करायेगा तो उस रुपये के ब्याज से दाता के द्वारा चुनी गयी तिथि को प्रतिवर्ष गौसेवा एवं सन्त सेवा

आदि शुभकार्य होता रहेगा तथा दाता को प्रतिवर्ष उसकी सूचना भी प्राप्त होती रहेगी ।

ट्रस्ट की शुभ प्रवृत्तियों से सभी अधिकारी सुखशान्ति एवं धर्मलाभ प्राप्त करें । अन्त में यही भगवान् से प्रार्थना है ।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत् ।।"



"श्री त्यागमूर्ति जनकल्याण ट्रस्ट समिति" (पंजीकृत संख्या 2956 उ. प्र.) का संक्षिप्त परिचय एवं उसकी शुभप्रवृत्तियां :–

२६ जुलाई सन् १९७७ को श्री त्यागमूर्ति जी ने अपने कुछ महात्माओं एवं सहयोगियों के समक्ष विचार रखा कि यहां साधनासदन आश्रम के अंग के रूप में कुछ जनकल्याणार्थ प्रवृत्तियों की आवश्यकता है। प्रश्न करने पर उन्होंने बताया कि यहां गंगास्नान के लिये घाट की आवश्यकता है जहां आश्रमवासी एवं आसपास के दूसरे आश्रमों में रहने वाले व बाहर से आने वाले यात्री सबको सुविधा हो जाये, क्योंकि बाहर से आने वाले एवं यहां के रहने वालों को घाट के न रहने से गंगास्नान का बड़ा कष्ट है। साथ ही महात्माओं के निवास से अलग गंगाजी के पावन तट पर शान्त एवं स्वच्छ स्थान में अपने सहयोगी साधकों के निवास योग्य साधकनिवास के निर्माण की आवश्यकता है। जिसमें कोई भी साधक आकर कुछ समय शान्ति पूर्वक साधन-भजन कर सकें एवं शान्ति का अनुभव करें। तीसरी और एक प्रवृत्ति जनकल्याणार्थ अत्यावश्यक है एवं आश्रम के लिये विशेष शोभाप्रद है, वह यह है कि आश्रमवासी महात्माओं एवं ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त इस तीर्थभूमि हरद्वार में यत्र-तत्र स्वतन्त्र रूप से रहने वाले सन्त महात्मा एवं बाहर से आने वाले अभ्यागत साधुसन्त अकिञ्चन, गरीब आदि के लिये भोजन की व्यवस्था अन्नक्षेत्र के रूप में ही हों जिससे अधिकृत किसी भी भोजनार्थी को भोजन के लिये आने

में संकोच न हो, चाहे वह सन्त-महात्मा के रूप में हो या भिक्षु के रूप में हो। इसके लिये एक सन्त भोजनालय के भी निर्माण की आवश्यकता है। साथ ही श्री त्यागमूर्ति जी ने यह भी विचार अभिव्यक्त किया कि श्री गंगा जी के घाट के तीन विभाग होने चाहिये, जिसमें घाट का एक भाग सार्वजनिक उपयोग के लिये, दूसरा भाग मुख्य रूप से साधकनिवास में रहने वाले साधक भक्तों के लिये तथा तीसरा भाग केवल महात्माओं के उपयोग के लिये हो, चाहे वे महात्मा साधनासदन में निवास करने वाले हों या अन्य आश्रमों में निवास करने वाले हों। इसके साथ ही श्री त्यागमूर्तिजी ने यह भी विचार प्रकट किया कि पावन गंगा जी के तट पर भगवान शंकर की आराधना का विशेष माहात्म्य है, अतः प्रत्येक घाट पर भगवान् शंकर का मन्दिर होना चाहिये एवं गंगाजी का भी मन्दिर होना चाहिये; जिससे कि गंगा तट पर आये हुये आस्तिक भक्तजन एवं सन्त-महात्मा भी श्री गंगाजी का विशेष दर्शन एवं पूजन-प्रार्थना कर सकें; तथा भगवान् शंकर को जल चढ़ा सकें एवं पूजन-प्रार्थना भी कर सकें, ऐसी स्थिति में सुव्यवस्थित पुष्प वाटिका भी होनी चाहिये जिसमें भगवान शंकर पर चढ़ाने के लिये भरपूर बिल्वपत्र एवं सभी मन्दिरों के लिये पुष्प आदि प्राप्त हो जाय। श्री त्यागमूर्ति जी के जनकल्याणकारी पवित्र सभी उत्तम विचारों को सुनकर उपस्थित सभी महात्मा एवं सत्संगियों ने बहुत ही प्रसन्नता व्यक्त की। साथ ही एक सत्संगी ने कहा कि जब ये सभी कल्याणकारी प्रवृत्तियां हो रही हैं तो मन्दिरों के साथ ही पवित्र गंगातट पर एक छोटा सा 'यज्ञमण्डप' भी अवश्य होना चाहिये जिसमें समय-समय पर हवन आदि कार्य सम्पन्न

हो सके। इस बात का श्रीत्यागमूर्ति जी सहित सभी महात्माओं एवं सत्संगियोंने सहर्ष अनुमोदन किया। फलस्वरूप परस्पर कुछ विचार-विनिमय के उपरान्त यह निश्चय किया गया किं जनकल्याणकारी इन मंगलमय प्रवृत्तियों को सम्पन्न करने के लिये 'सत्प्रेमसाधनाट्रस्ट' से अलग एक न्यास (ट्रस्ट) की स्थापना होनी चाहिये जो कि समिति के रूप में हो एवं सोसाइटी-एक्ट के अनुसार उसका रजिस्ट्रेशन भी हो जाना चाहिये। इस निश्चय के परिणाम स्वरूप सन् १९७७ ई. में ही "त्यागमूर्ति जनकल्याणट्रस्ट समिति" की स्थापना कर के उसको पंजीकृत कर दिया गया एवं दाता के कर मुक्त्यर्थ 80 G नम्बर भी प्राप्त कर लिया गया।

ईश्वर की प्रेरणा एवं सुहृदय पुण्यात्माओं के सहयोग से उक्त सभी पवित्र सकल्प शनैः शनैः पूर्ण हुए।

"त्यागमूर्ति जनकल्याण ट्रस्ट समिति" के ट्रस्टी सदस्यों के नाम :–

१. त्यागमूर्ति महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गणेशानन्द पुरीजी महाराज, अध्यक्ष एवं मैनेजिंग ट्रस्टी, हरद्वार, बम्बई।
२. श्री स्वामी परमेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज, मन्त्री हरद्वार।
३. महामण्डलेश्वर श्री स्वामी जगदीशपुरी जी महाराज, उपमन्त्री, हरद्वार।
४. श्री ब्र. अम्बिकानन्दजी महाराज, कोषाध्यक्ष, हरद्वार।

"श्री त्यागमूर्ति जनकल्याणट्रस्ट समिति" की शुभप्रवृत्तियां

घाट :–

कुल तीन घाट हैं जिसमें 'जनकल्याणघाट' एवं 'सन्तघाट' समिति की शुभप्रवृत्ति तथा मध्य का 'लोकेश्वर घाट' सत्प्रेमसाधना ट्रस्ट की शुभप्रवृत्ति हैं । जनकल्याण घाट के दो विभाग हैं – एक पुरुष घाट एवं दूसरा महिला घाट । जनकल्याण घाट से आम जनता लाभान्वित होती है; चाहे वह स्थानीय हो या बाहरी यात्री के रूप में । 'सन्तघाट' केवल महात्माओं के लिये हैं; जिससे आश्रमवासी महात्मा व अन्य आश्रमों के महात्मा एवं बाहर से आये हुये यात्री के रूप में महात्मा सब लोग स्वेच्छापूर्वक स्नान करते हैं । 'लोकेश्वर घाट' साधकनिवास में रहने वाले साधक भक्तों के लिये

मुख्यरूप से हैं । इसमें भी दो भाग हैं– महिला घाट एवं पुरुषघाट । लोकेश्वर घाट से साधकनिवास में रहने वाले एवं बाहर से आये हुये यात्री भक्त भी लाभान्वित होते रहते हैं ।

मन्दिर :–

श्री जनकल्याण घाट पर गंगेश्वरमहादेव का मन्दिर तथा लोकेश्वर घाट पर भगवान् चन्द्रशेखर का मन्दिर एवं सन्तघाट पर श्री नर्मदेश्वर महादेव का मन्दिर है । ये तीन भगवान् शंकर के मन्दिर हैं तथा लोकेश्वर घाट एवं जनकल्याण घाट इन दोनों घाटों के मध्य में श्री गंगामाता का मन्दिर हैं । इन मन्दिरों में नित्यप्रति साय एवं प्रातः पूजन आरती होती है जिसमें मुख्यरूप से साधकनिवास में रहने वाले भाग लेते हैं तथा बाहर से आने वाले भी पूजन-दर्शन से लाभान्वित होते हैं । समय-समय पर विशेष पूजन एवं अनुष्ठान भी होते रहते हैं ।

यज्ञमण्डप :–

लोकेश्वर घाट एवं सन्तघाट के मध्य १६ खम्भों का एक छोटा सा रम्य 'यज्ञमण्डप' है जिसके मध्य में मण्डप के अनुरूप ही यज्ञकुण्ड है । लघुकाय यज्ञकुण्ड और मण्डप का निर्माण शास्त्रीय विधि से हुआ है जिसमें समय-समय पर हवन यज्ञ होता है ।

पुष्पवाटिका :–

इन मन्दिरों में पूजन के लिये जो पुष्पों की आवश्यकता होती है उनकी पूर्ति के लिये दो पुष्पवाटिकायें हैं– एक

साधनासदन आश्रम के सामने 'साधनासदन वाटिका' एवं दूसरी साधकनिवास के सामने 'श्री साधकनिवास वाटिका'।

साधकनिवास :–

"साधकनिवास" पवित्र गंगातट पर लगभग तीन मंजिल का भवन है जिसमें १२ कमरे सभी सुविधा से युक्त फ्लेट के रूप में, ५ कमरे सामान्य रूप में और ५ गुफायें तथा एक स्टोर मिलाकर कुल छोटे-बड़े २३ कमरे हैं। शान्त एवं एकान्त स्थान होने से साधकों के साधन-भजन एवं निवास के लिंये साधक-निवास विशेष अनुकूल है। जहां रहकर साधक भक्त गंगामाता के सान्निध्य में विशेष शान्ति एवं प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। शान्तस्वभाव संयमी एवं सेवाभावी संस्कृत के विद्यार्थी भी साधकनिवास में ही निवास करते हैं।

साधकनिवास मे अंकित साधकनिवास के उद्देश्य और नियम

उद्देश्य :–

मानव जीवन की सफलता के लिये यम, नियमादि देवोपासना एवं श्रवण मनन आदि ज्ञान के साधनों का अनुष्ठान करके अद्वैत परमात्मा का दर्शन ही साधकनिवास का मुख्य उद्देश्य है।

नियम :–

१– अतः उक्त उद्देश्य को ध्यान में रखकर साधनव्रती साधक ही 'साधकनिवास' में रहने के मुख्य अधिकारी हैं ।

२– ऐसे साधक जिन्होंने 'साधनासदन' एवं 'साधकनिवास' के निर्माण में सहयोग प्रदान किया है वे स्वेच्छा पूर्वक जब तक चाहें निवास कर सकते हैं । अन्य साधक व्यवस्थापक की अनुमति से एक सप्ताह तक निवास कर सकते हैं ।

३– 'साधकनिवास' में रहने वाला कोई भी व्यक्ति कमरे में ताला लगाकर 'साधकनिवास' से बाहर एक दिन से अधिक नहीं रह सकता है ।

४– 'साधकनिवास' में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रातः एवं सायं की आरती, स्तुति एव महिम्नपाठ विष्णुसहस्त्रनामपाठ तथा स्वाध्याय सत्संग आदि दैनिक साधनात्मक कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिये ।

५– 'साधकनिवास' में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्वच्छता, पवित्रता तथा शान्ति का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये ।

सन्त भोजनालय एवं अन्नक्षेत्र :–

साधनासदन आश्रम एवं साधकनिवास दोनों के मध्य 'श्री सन्त भोजनालय' का निर्माण हुआ है, जहां पर प्रतिदिन साधनासदन आश्रम एवं साधकनिवास में रहने वाले सन्त-महात्मा तथा विद्यार्थियों का भोजन होता है । साथ ही स्वतन्त्र रूप से रहने वाले अन्य स्थानों के महात्मा और यात्री के रूप में आये हुए सन्त-महात्मा भी प्रतिदिन भोजन करते हैं । गरीब व अनाथ भिक्षुकों को भी यथासाध्य भोजन दिया जाता है । किसी भी भोजनार्थी को यहां आने में संकोच नहीं होता है क्योंकि यह भोजनालय अन्नक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया । त्यागमूर्ति जनकल्याण ट्रस्ट समिति के जनकल्याणार्थ वर्तमान में मुख्य शुभप्रवृत्ति अन्नक्षेत्र की ही है क्योंकि "अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।" इस श्रीमद्-भगवद्गीता के वचनानुसार सबके अन्दर वैश्वानर अग्नि के रूप में विराजमान् साक्षात् भगवान् को ही भोजन के रूप में आहुति प्रदान की जाती है ।



श्री लोकेश्वर धाम :–

२५ फरबरी १९८५ को श्री त्यागमूर्ति जनकल्याण ट्रस्ट समिति की एक बैठक में ट्रस्ट के परमाध्यक्ष श्री त्यागमूर्ति जी महाराज ने ट्रस्ट के सदस्यों एवं सहयोगी कार्यकर्ताओं का ध्यानाकर्षित करते हुए विशेष प्रस्ताव रखा, चूँकि साधना-सदन में अब केवल सन्त महात्माओं के रहने का नियम हो गया है एवं साधक निवास में ही भक्तों के निवास का नियम कर दिया गया है। परन्तु आगन्तुक साधक भक्तों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए साधक निवास पर्याप्त नहीं है । इसलिए इस भवन के अतिरिक्त सन्त भोजनालय के ऊपर कुछ कमरों का निर्माण करके साधक निवास के विस्तार की अत्यावश्यकता है । जिससे भोजनालय का विस्तार भी हो जायेगा । जो कि वर्तमान स्थिति को देखते हुए बहुत जरूरी है। पूज्य अध्यक्ष श्री जी के इस अत्युत्तम प्रस्ताव की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए सभी ने सहर्ष सम्मति प्रदान की । परम प्रभु की लोकेश्वर भगवान की अहैतुकी महती परमानुकम्पा तथा भक्तों एवं सन्तों के सहयोग व सद्भाव से उक्त कार्य सम्पन्न हुआ । इस भवन का नाम व्यवहारिक सुविधा के लिए अपने मन्दिर के भगवान शिव के नाम से "लोकेश्वर धाम" रखा गया है तथा विस्तरित भोजनालय का नाम "प्रभु मण्डप" रखा गया है । भोजनालय पर स्थित यह लोकेश्वर धाम तीन मञ्जिल का भवन है, जिसमें १४ कमरे सभी सुविधाओं से युक्त फ्लेट के रूप में, स्टोर के रूप में दो सामान्य कमरे, दो गुफाएँ कुल मिलाकर छोटे-बड़े १८ कमरे हैं तथा प्रत्येक मंजिल में एक-एक हॉल (विश्राम

मण्डप) भी है । इस सुन्दर, शान्त एवं एकान्त स्थान में रहकर साधकों को विशेष शान्ति व आनन्द का अनुभव होता है ।

श्री लोकेश्वर धाम के उद्देश्य एवं नियम वही है, जो कि साधक निवास के हैं ।

अन्नक्षेत्र कोष :–

यह जनकल्याणकारी परम पुण्यप्रद अन्नदानयज्ञ रूप शुभप्रवृत्ति सदा चलती रहे इसके लिये "श्री त्यागमूर्ति जनकल्याण ट्रस्ट समिति" ने एक अन्नक्षेत्र कोष की स्थापना की है । समिति ने ऐसा निर्णय किया है कि जो कोई भी व्यक्ति "**अन्नक्षेत्र कोष**" में पांच हजार एक (५००१) रुपये जमा करायेगा तो उस रुपये के द्वारा चुनी गयी तिथि को प्रतिवर्ष सभी मन्दिरों में भोग लगेगा एवं साधनासदन आश्रम तथा साधकनिवास में रहने वाले सन्त-महात्मा, विद्यार्थी आदि सभी भोजन के रूप में प्रसाद ग्रहण करेंगे तथा बाहर से आने वाले सन्त-महात्मा, भिक्षुक, अकिञ्चन को भी प्रसाद रूप में भोजन दिया जायेगा ।

अन्त में सर्व समर्थ प्रभु से प्रार्थना है कि भगवान् सबको स्वास्थ्य एवं सद्बुद्धि प्रदान करे एवं पुण्यात्मा सज्जनों को सुख-शान्ति प्राप्त हो और वे दुःखमय कठिन समस्याओं से अनायास मुक्त होकर दूसरों को भी दुःख से मुक्त करें ।

"दुर्जनः सज्जनो भूयात्, सज्जनः शान्तिमाप्नुयात् ।
शान्तस्तरतुदुर्गाणि मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ।।"

श्री जय जगदीश्वर आरती

ओं जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे ।।
भक्तजनों के संकट छिनमें दूर करे ।।ओं।।
जो ध्यावै फल पावै, दुख बिनसे मन का ।।प्रभु।।
सुख-सम्पति घर आवै, कष्ट मिटे तनका ।।ओं।।
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी ।।प्रभु।।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी ।।ओं।।
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी ।।प्रभु।।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ।।ओं।।
तुम करुणा के सागर, तुम पालन-कर्ता ।।प्रभु।।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्त्ता ।।ओं।।
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति ।।प्रभु।।
किस विध मिलूं दयामय, तुमको मैं कुमती ।।ओं।।
दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, तुम ठाकुर मेरे ।।प्रभु।।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ।।ओं।।
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा ।।प्रभु।।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा ।।ओं।।

— : इति शम् : —

उद्बोधन

१. अपने परम प्राप्तव्य का निश्चय करो ।

२. आपका परमप्राप्तव्य पूर्ण है अधूरा नहीं ।

३. आपका परमप्राप्तव्य आपसे अविभाज्य है ।

४. जो पूर्ण और अविभाज्य है वह स्वयंसिद्ध है जन्य नहीं ।

५. स्वयंसिद्ध पूर्ण और अविभाज्य आपका स्वयं है— आत्मा है ।

६. आत्मा की अनुभूति ही उसकी प्राप्ति है, अप्राप्त की प्राप्ति नहीं ।

७. भजन के लिये आगामी क्षण की प्रतीक्षा मत करो ।